आचार्य श्री तुलसी धवल समारोह के अभिनन्दन में

अग्नि-परीक्षा

कवयिता

आचार्य श्री तुलसी

सम्पादक

श्रमण श्री सागरमलजी : मुनि श्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम'

प्रबन्ध सम्पादक

श्री सोहनलाल बाफणा

१९६१

आत्माराम एण्ड संस

दिल्ली जालन्धर जयपुर मेरठ चंडीगढ

पम्प और रत्न ने महाभारत की कथा पर महाकाव्य रचे और पोन्न ने राम-कथा पर भुवनैवय रामाभ्युदय नामक काव्य रचा। हालाकि वर्तमान में यह काव्य अनुपलब्ध है, पर अन्य अनेक ग्रन्थो मे इसकी गौरव-गाथा मिलती है।

जैन कवि श्री नागचन्द्र ने रविषेण और विमलसूरी की रामायण के आधार पर कन्नड मे रामचन्द्र चरित्र पुराण नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया।

तेरहवी शताब्दी के उत्तरार्ध मे जैन मुनिश्री कुमुदेन्दु ने कुमुदेन्दु रामायण लिखी। चौदहवी और सोलहवी शताब्दी के बीच वैदिक पडितो ने भी रामायण लिखी।

राजस्थानी भाषा मे

राजस्थानी भाषा मे जैनेतर विद्वानो द्वारा रचित राम-कथा-ग्रन्थो का इतिहास जहां सतरहवी शताब्दी से प्रारम्भ होता है, वहा जैन विद्वानो व मुनिजनो द्वारा रचित रामायण ग्रन्थ का इतिहास सोलहवी शताब्दी के आदि चरण मे ही प्रारम्भ हो जाता है। श्री अगरचन्दजी नाहटा ने अपने एक लेख मे श्वेताम्बर और दिगम्बर जैन विद्वानो द्वारा रचित रामयशोरसायन प्रभृति २२ ग्रन्थो का परिचय दिया है।*

हिन्दी भाषा की ओर

हिन्दी भाषा का युग आया तो जैन आचार्यो व मुनियो की लेखिनी राम-कथा को लेकर हिन्दी भाषा की ओर मुड चली है। अनेको ग्रन्थ अब तक रचे जा चुके हैं। आधुनिक भाव भाषा की दृष्टि से महामहिम आचार्य श्री तुलसी द्वारा रचित यह 'अग्नि-परीक्षा' ग्रन्थ अपनी प्रकार का एक है। सचमुच ही यह एक प्रगीत काव्य है। इसमे लका-विजय से सीता-परित्याग और उसकी अग्नि-परीक्षा तक का सजीव चित्रण किया गया है।

जैन और वैदिक रामायणों मे कथा-भेद

महाकवि तुलसी के रामचरित मानस मे लका मे ही पुनर्मिलन के अवसर पर सीता की अग्नि-परीक्षा होती है। परीक्षित सीता भी रजक के ताने मात्र से पुन लक्ष्मण के द्वारा वन मे छुडवा दी जाती है। किन्तु प्रस्तुत अग्नि-परीक्षा खण्ड काव्य मे लका-विजय के पश्चात् सीता सानन्द राम-लक्ष्मण के साथ अयोध्या लौटती है। कालान्तर से राम लोकापवाद को और रजक के ताने को सुनकर कृतान्तमुख सेनापति के हाथो पुन निर्जन वन मे छुडवा देते हैं। लवण और अकुश (लवकुश) मातृ-प्रतिशोध के लिए अनेक राजाओ की सेना के साथ अयोध्या पर चढाई करते हैं। युद्ध के अन्त मे सीता का परिचय खुलता है। राम उसे पुन अयोध्या लाते हैं और उसकी अग्नि-परीक्षा करवाते हैं।

---

* राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० ८४०

और समीक्षात्मक दृष्टि से लिखे विचार भाए हैं। ग्रन्थ कुछ एक मौलिक विशेषताएं रखता है।

राम-कथा पर प्रकाश डालनेवाला प्राकृत भाषा का दूसरा महाग्रन्थ 'तिसट्ठि महापुरिसगुणालंकार' है। इसमें त्रेसठशलाकापुरुषों के चरित्र हैं। यह आदिपुराण और उत्तरपुराण इन दो खण्डों में विभक्त है। आदिपुराण में तीर्थंकर ऋषभ देव का और उत्तरपुराण में तेईस तीर्थंकर और अन्य महापुरुषों का काव्यात्मक जीवन चरित्र है। उत्तरपुराण में पद्मपुराण (रामायण) का भी प्रमुख स्थान है। यह इस नाम से स्वतंत्र ग्रन्थ के रूप में भी रखा जाता है। बीस हजार श्लोक परिमित उक्त ग्रन्थ के रचयिता कविवर पुष्पदन्त हैं और इसकी रचना छः वर्षों के अथक श्रम से विक्रम संवत् १ १ में सम्पन्न हुई है। इनकी रामायण अन्य जैन रामायणों से बहुत सारे मौलिक भेद रखती है। इस जैन रामायण में महासती सीता मंदोदरी से उत्पन्न रावण की पुत्री बताई गई है। साहित्यिक दृष्टि से यह ग्रन्थ बहुत ही उच्च माना गया है।

संस्कृत में

संस्कृत भाषा में भी जैन कवियों की लेखिनी यथावत् रूप से चली। कविवर रविषेण ने प्राकृत के पउमचरिय का पल्लवित अवतरण संस्कृत भाषा में कर दिया। पउम चरिय दश सहस्र श्लोक परिमाण है। रविषेण का पद्मचरित्र अठारह सहस्र श्लोक परिमाण है। पउमचरिय की रचना आर्या छंदों में है और पद्मचरित्र की रचना अनुष्टुप् छन्दों में। इस ग्रन्थ का प्रचलित नाम पद्मपुराण है और जैन रामायणों में यह सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसकी रचना वि सं ७३३ के लगभग हुई है।

आचार्य हेमचन्द्र का त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र बत्तीस हजार श्लोक परिमाण है। इस ग्रन्थ के सातवें पर्व में लगभग पैंतीससौ श्लोकों में राम-कथा का वर्णन किया गया है। सचमुच ही आचार्य हेमचन्द्र का यह ग्रन्थ एक सुविस्तृत पुराण भी है और महाकाव्य भी।

दिगम्बर आचार्य जिनसेन ने भी विमलाचार्य के पउमचरिय के आधार पर संस्कृत भाषा में पद्मपुराण की रचना की है। और भी अनेकानेक काव्य व चरित्र राम-कथा के विषय में जैन मनीषियों ने लिखे हैं।

कन्नड़ भाषा में

कन्नड़ दक्षिण की एक प्रमुख भाषा है। किसी युग में कर्नाटक में जैन धर्म का बहुत विस्तार था। कन्नड़ भाषा के साहित्य का उद्गम ही विशेषतः जैन मनीषियों की प्रतिभा से होता है। इस भाषा में भी नाना जैन विद्वानों ने राम-चरित्र रचे हैं। पम्प, पोन्न और रन्न नामक युग के सर्वश्रेष्ठ कवियों में थे। ये तीनों ही जैन थे।

पम्प और रत्न ने महाभारत की कथा पर महाकाव्य रचे और पोन्न ने राम-कथा पर भुवनैक्य रामाभ्युदय नामक काव्य रचा। हालांकि वर्तमान में यह काव्य अनुपलब्ध है, पर अन्य अनेक ग्रन्थो मे इसकी गौरव-गाथा मिलती है।

जैन कवि श्री नागचन्द्र ने रविषेण और विमलसूरी की रामायण के आधार पर कन्नड मे रामचन्द्र चरित्र पुराण नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया।

तेरहवी शताब्दी के उत्तरार्ध मे जैन मुनिश्री कुमुदेन्दु ने कुमुदेन्दु रामायण लिखी। चौदहवी और सोलहवी शताब्दी के बीच वैदिक पडितो ने भी रामायण लिखी।

राजस्थानी भाषा मे

राजस्थानी भाषा मे जैनेतर विद्वानो द्वारा रचित राम-कथा-ग्रन्थो का इतिहास जहाँ सतरहवी शताब्दी से प्रारम्भ होता है, वहा जैन विद्वानो व मुनिजनो द्वारा रचित रामायण ग्रन्थ का इतिहास सोलहवी शताब्दी के आदि चरण से ही प्रारम्भ हो जाता है। श्री अगरचन्दजी नाहटा ने अपने एक लेख मे श्वेताम्बर और दिगम्बर जैन विद्वानो द्वारा रचित रामयशोरसायन प्रभृति २२ ग्रन्थों का परिचय दिया है।*

हिन्दी भाषा की ओर

हिन्दी भाषा का युग आया तो जैन आचार्यों व मुनियो की लेखिनी राम-कथा को लेकर हिन्दी भाषा की ओर मुड चली है। अनेको ग्रन्थ अब तक रचे जा चुके हैं। आधुनिक भाव भाषा की दृष्टि से महामहिम आचार्य श्री तुलसी द्वारा रचित यह 'अग्नि परीक्षा' ग्रन्थ अपनी प्रकार का एक है। सचमुच ही यह एक प्रगीत काव्य है। इसमे लका-विजय से सीता-परित्याग और उसकी अग्नि-परीक्षा तक का सजीव चित्रण किया गया है।

जैन और वैदिक रामायणों मे कथा-भेद

महाकवि तुलसी के रामचरित मानस मे लका मे ही पुनर्मिलन के अवसर पर सीता की अग्नि-परीक्षा होती है। परीक्षित सीता भी रजक के ताने मात्र से पुन लक्ष्मण के द्वारा वन मे छुडवा दी जाती है। किन्तु प्रस्तुत अग्नि-परीक्षा खण्ड काव्य मे लका-विजय के पश्चात् सीता सानन्द राम-लक्ष्मण के साथ अयोध्या लौटती है। कालान्तर से राम लोकापवाद को और रजक के ताने को सुनकर कृतान्तमुख सेनापति के हाथो पुन निर्जन वन मे छुडवा देते हैं। लवण और अकुश (लवकुश) मातृ-प्रतिशोध के लिए अनेक राजाओ की सेना के साथ अयोध्या पर चढाई करते हैं। युद्ध के अन्त मे सीता का परिचय खुलता है। राम उसे पुन अयोध्या लाते हैं और उसकी अग्नि-परीक्षा करवाते हैं।

---

* राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० ८४०

यह कथा-भेद आचार्य श्री तुलसी ने स्वयं नहीं किया है, परन्तु जैन और वैदिक रामायणों का यह परम्परागत भेद है। दोनों परम्पराओं की राम-कथा में आदि से अन्त तक एकरूपता भी है तो आदि से अन्त तक अनेकरूपता भी। सभी पात्रों के धार्मिक आधार तो बदल ही जाते हैं, साथ-साथ उनके कथान्तर घटना-प्रसंग भी। दोनों परम्पराओं की राम-कथा का तुलनात्मक अध्ययन अवश्य एक रोचक और ज्ञानवर्द्धक विषय बनता है परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में वह विस्तार क्षम्य नहीं है। दोनों परम्पराओं की कथा में उल्लेखनीय भेद तो यह है कि वैदिक परम्परा में प्रायः राम को ब्रह्म का स्वरूप दे दिया जाता है और जैन परम्परा अवतारवाद की हिमायती नहीं है, अतः उसमें प्राकृत रामायणों से ले कर वर्तमान की रामायणों तक भी राम एक पुरुष महापुरुष व वासुदेव लक्ष्मण के ज्येष्ठ बन्धु बलदेव ही माने जाते हैं। वे महान् राजा थे इसलिये अर्चनीय नहीं अपितु जीवन के अन्त में उन्होंने मुनित्व धर्म स्वीकार किया और सर्वज्ञ होकर मोक्षधाम पहुँचे इसलिये वे जैन जगत् के अर्चनीय और उपासनीय हैं। वैदिक परम्परा में राम-कथा का आदि ग्रन्थ वाल्मीकि रामायण है। उसके बाद ही यह कथा महाभारत व अन्य पुराण ग्रन्थों में आई, ऐसा माना जाता है। वाल्मीकि ने राम को एक महामानव के रूप में ही प्रस्तुत किया है। आदि से अन्त तक राम एक मानव रहते हैं। उनमें ईश्वरता का आरोप कवि ने कहीं नहीं होने दिया है। अध्यात्म रामायण में राम के ब्रह्मत्व की झांकी मिलती है और भक्त कवि तुलसी के राम चरित मानस में तो 'सिया राम मय सब जग जानि' का आदि से अन्त तक निर्वाह मिलता है। आज के बुद्धि-प्रधान युग में जैन रामायणें बुद्धिगम्यता की दिशा में अधिक प्रशस्त मानी गई हैं। वहां अधिकांश घटनाएं स्वाभाविक और सम्भव रूप में मिलती हैं। उदाहरणार्थ—वैदिक रामायणों में रावण के दस मुख माने गये हैं, इसीलिए दशकन्धर, दशानन, दशमुख आदि नाम उसके प्रचलित हुए हैं, ऐसा कहा जाता है। जैन रामायणों में रावण के दशानन कहलाने का वर्णन इस प्रकार है—बचपन में रावण एक बार खेलते-खेलते भण्डार में पहुंच गया। वहां उसे तोयदवाहन का हार मिल गया। उसमें नौ मणियां जड़ी हुई थीं जिनमें से प्रत्येक मणि में पहनने वाले का मुख प्रतिबिम्बित होता था। रावण ने बाल-लीला में उसे उठा कर पहन लिया और तभी से लोग उसे दशानन कहने लगे।[1] कुछ एक जैन रामायणों के प्रारम्भ में ही वैदिक रामायणों में कही गई अस्वाभाविक बातों की आलोचना की गई है। स्वयंभूकृत पउमचरिउ में कोणिक भगवान् महावीर से राम

---

१ बालहिँ रमण-मुहहँ समुद्दिण्णइँ। तं पडिबिम्बइँ मुह-परिचिण्णइँ।
दसहिँ सिरहिँ ताइँ वहासउणइँ फिर-तारइ ततइँ लोयणइँ।
तें दहमुहु पहरिव भणेउ किउ दंसावणइ जेम पसिद्धि गउ॥

—१।६।४

कथा कहने का अनुरोध करते हैं और जिज्ञासा के रूप मे वैदिक परम्परा मे चलनेवाली असगतियो को भी प्रस्तुत करते हैं। उनमे मुख्य जिज्ञासाए हैं—रावण के दशमुख और बीस हाथ कैसे हैं? कुम्भकरण छ महीने तक कैसे सोता था और करोडो महिष कैसे खा जाता था? कूर्म ने पृथ्वी को अपनी पीठ पर धारण किया तो वह स्वय कहा था? रावण की पत्नी मन्दोदरी को विभीषण ने अपनी पत्नी कैसे बना लिया आदि।[1] इस प्रकार राम की अवतारवादिता और विविध अस्वाभाविकताओ को लेकर जैन और वैदिक परम्परा की राम-कथा मे बहुत सारे मौलिक भेद आ जाते हैं।

वैदिक रामायणो मे कथा-भेद

रामायण का कथा-भेद एकमात्र परम्परा-भेद पर ही आधारित है, ऐसी बात नही है। एक-एक परम्परा मे भी राम-कथा की विभिन्न धाराए हैं। प्रत्येक रचयिता प्राय कुछ न कुछ अपनी ओर से जोडता ही है। कवि इसे अपना मौलिक अधिकार भी मानता है। सीता को रावण किस प्रकार उठा कर ले गया, इस विषय मे कवियो ने अपनी सूझ-बूझ के अनुसार नाना युक्तिया काम मे ली। सीता सती थी। स्वेच्छा से ही रावण के साथ जाने के लिए चरण नही बढ़ा सकती थी। रावण बलात् उसे उठाकर ले जाता है, तो पर-पुरुष के स्पर्श-दोष से वह दूषित होती है। इस सम्बन्ध मे सबसे निराली उक्ति यह है कि सीता जिस झोपडी मे रहती थी, रावण पृथ्वी खण्ड के साथ उस झोपडी को ज्यो का त्यो उठाकर ले गया।

---

१ पणवेप्पिणु जिणु तगय-मणेण। पुणु पुच्छिउ गोत्तमसामि तेण॥
परमेसर पर-सासणेंहि सुव्वय विवरेरी।
कहे जिण-सासणे केम थिय कह राहव-केरी॥
जगे लोएंहि ढक्करिवन्तएंहि। उप्पाइउ भन्तिउ भन्तएंहि॥
जइ कुम्मे धरियउ धरणि-वीढु। तो कुम्मु पडन्तउ केण गीढु॥
जइ रामहो तिहुअणु उवरे माइ। तो रावणु कहिं तिय लेवि जाइ॥
अण्णु वि खरदूसरण-समरे देव। पहु जुज्झइ सिच्चु कॅव॥
किह तियमइ-कारणे कविवरेण। वाइज्जइ वालि सहोयरेण॥
किह वाणर गिरिवर उव्वहन्ति। बन्धेवि मयरहरु समुत्तरन्ति॥
किह रावणु दहमुह वीस हत्थु। अमराहिव-भुव-बन्धण समत्थु॥
वरिसद्ध सुअइ किह कुम्भयण्णु। महिसाकोडिहि मिरण धाइ अण्णु॥
जें परिसेसिउ दहवयणु। पर-णारीहिं समणु।
सो मन्दोवरि जणणि-सम, केइ लेइ विहीसणु॥
—विज्जाहरकाड, संधि ९-१०

यह कथा-भेद आचार्य श्री तुलसी ने स्वयं नहीं किया है, परन्तु जैन और वैदिक रामायणों का यह परम्परागत भेद है। दोनों परम्पराओं की राम-कथा में आदि से अन्त तक एकरूपता भी है तो आदि से अन्त तक अनेकरूपता भी। सभी पात्रों के धार्मिक आधार तो बदल ही जाते हैं, साथ-साथ उनके अवान्तर घटना प्रसंग भी। दोनों परम्पराओं की राम-कथा का तुलनात्मक अध्ययन अवश्य एक रोचक और ज्ञानवर्धक विषय बनता है परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में वह विस्तार क्षम्य नहीं है। दोनों परम्पराओं की कथा में उल्लेखनीय भेद तो यह है कि वैदिक परम्परा में क्रमशः राम को ब्रह्म का स्वरूप दे दिया जाता है और जैन परम्परा अवतारवाद की हिमायती नहीं है, अतः उसमें प्राकृत रामायणों से ले कर वर्तमान की रामायणों तक भी राम एक पुरुष महापुरुष व वासुदेव लक्ष्मण के ज्येष्ठ बन्धु बलदेव ही माने जाते हैं। वे महान् राजा थे इसलिये अर्चनीय नहीं अपितु जीवन के अन्त में उन्होंने मुनित्व धर्म स्वीकार किया और सर्वज्ञ होकर मोक्षधाम पहुँचे इसलिये वे जैन जगत् के अर्चनीय और उपासनीय हैं। वैदिक परम्परा में राम-कथा का आदि ग्रन्थ वाल्मीकि रामायण है। उसके बाद ही यह कथा महाभारत व अन्य पुराण ग्रन्थों में आई, ऐसा माना जाता है। वाल्मीकि ने राम को एक महामानव के रूप में ही प्रस्तुत किया है। आदि से अन्त तक राम एक मानव रहते हैं। उनमें ईश्वरत्व का आरोप कवि ने कहीं नहीं होने दिया है। अध्यात्म रामायण में राम के ब्रह्मत्व की झाँकी मिलती है और भक्त कवि तुलसी के राम चरित मानस में तो 'सिया राम मय सब जग जानि' का आदि से अन्त तक निर्वाह मिलता है। आज के बुद्धि-प्रधान युग में जैन रामायणें बुद्धिगम्यता की दिशा में अधिक प्रशस्त मानी गई हैं। वहां अधिकांश घटनाएं स्वाभाविक और सम्भव रूप में मिलती हैं। उदाहरणार्थ—वैदिक रामायणों में रावण के दस मुख माने गये हैं इसीलिए दशकन्धर, दशानन, दशमुख आदि नाम उसके प्रचलित हुए हैं ऐसा कहा जाता है। जैन रामायणों में रावण के दशानन कहलाने का वर्णन इस प्रकार है—बचपन में रावण एक बार खेलते-खेलते भण्डार में पहुँच गया। वहां उसे तोयदवाहन का हार मिल गया। उसमें नौ मणियाँ जड़ी हुई थीं जिनमें से प्रत्येक मणि में पहनने वाले का मुख प्रतिबिम्बित होता था। रावण ने बाल-लीला में उसे उठा कर पहन लिया और तभी से लोग उसे दशानन कहने लगे।[1] कुछ एक जैन रामायणों के प्रारम्भ में ही वैदिक रामायणों में कही गई अस्वाभाविक बातों की आलोचना भी की गई है। स्वयंभूकृत पउमचरिउ में श्रेणिक भगवान् महावीर से राम

---

१ कीलंतिए रयण-मऊह समुज्जलइँ। तं महाविज्झाइँ सु-परिट्ठियउ।
दस्सोवियउ ताइँ महामणहँ सिर-तारउ तरलाइँ सोमालउ।
तें पहुउ दहसिर बलेल किउ पंचालउ जोव परिट्ठिउ तउ॥

—१।८।४

कथा कहने का अनुरोध करते हैं और जिज्ञासा के रूप मे वैदिक परम्परा मे चलनेवाली असगतियो को भी प्रस्तुत करते हैं। उनमे मुख्य जिज्ञासाए हैं—रावण के दशमुख और बीस हाथ कैसे हैं ? कुम्भकरण छ महीने तक कैसे सोता था और करोडो महिप कैसे खा जाता था ? कूर्म ने पृथ्वी को अपनी पीठ पर धारण किया तो वह स्वय कहा था ? रावण की पत्नी मन्दोदरी को विभीषण ने अपनी पत्नी कैसे बना लिया आदि ।[1] इस प्रकार राम की अवतारवादिता और विविध अस्वाभाविकताओ को लेकर जैन और वैदिक परम्परा की राम-कथा मे बहुत सारे मौलिक भेद आ जाते हैं।

वैदिक रामायणों मे कथा-भेद

रामायण का कथा-भेद एकमात्र परम्परा-भेद पर ही आधारित है, ऐसी बात नही है। एक-एक परम्परा मे भी राम-कथा की विभिन्न धाराए हैं। प्रत्येक रचयिता प्राय कुछ न कुछ अपनी ओर से जोडता ही है। कवि इसे अपना मौलिक अधिकार भी मानता है। सीता को रावण किस प्रकार उठा कर ले गया, इस विषय मे कवियो ने अपनी सूझ-बूझ के अनुसार नाना युक्तिया काम मे ली। सीता सती थी। स्वेच्छा से ही रावण के साथ जाने के लिए चरण नही बढा सकती थी। रावण बलात् उसे उठाकर ले जाता है, तो पर-पुरुष के स्पर्श-दोष से वह दूषित होती है। इस सम्बन्ध मे सबसे निराली उक्ति यह है कि सीता जिस झोपडी मे रहती थी, रावण पृथ्वी खण्ड के साथ उस झोपडी को ज्यो का त्यो उठाकर ले गया।

---

१ पणवेप्पिणु जिणु तग्गय-मणेण। पुणु पुच्छिउ गोत्तमसामि तेण ॥
परमेसर पर-सासणेहिं सुव्वय विवरेरी।
कहे जिण-सासणे केम थिय कह राहव-केरी ॥
जगे लोएहिं ढक्करियन्तएहिं। उप्पाइउ भन्तिउ भन्तएहिं ॥
जइ कुम्मे धरियउ धरणि-वोढु। तो कुम्मु पडन्तउ केण गोढु ॥
जइ रामहो तिहुअणु उवरे माइ। तो रावणु कहिं तिय लेवि जाइ ॥
अण्णु वि खरदूसरण-समरे देव। पहु जुज्झइ सिच्चु केंव ॥
किह तियमइ-कारणे कविवरेण। वाइज्जइ वालि सहोयरेण ॥
किह वाणर गिरिवर उव्वहन्ति। बन्धेवि मयरहरु समुत्तरन्ति ॥
किह रावणु दहमुहु वीस हत्थु। अमराहिव-भुव-बन्धण समत्थु ॥
वरिसद्ध सुअइ किह कुम्भयण्णु। महिसाकोडिहिं मिण धाइ अण्णु ॥
जें परिसेसिउ दइवयणु। पर-णारीहिं समणु।
सो मन्दोवरि जणणि-सम, केइ लेइ बिहीसणु ॥

—विज्जाहरकाण्ड, सधि ६-१०

यह कथा-भेद आचार्य श्री तुलसी ने स्वयं नहीं किया है, परन्तु जैन और वैदिक रामायणों का यह परम्परागत भेद है। दोनों परम्पराओं की राम-कथा में आदि से अन्त तक एकरूपता भी है तो आदि से अन्त तक अनेकरूपता भी। सभी पात्रों के धार्मिक आधार तो बदल ही जाते हैं साथ-साथ उनके अवान्तर घटना-प्रसंग भी। दोनों परम्पराओं की राम-कथा का तुलनात्मक अध्ययन अवश्य एक रोचक और ज्ञानवर्धक विषय बनता है परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में वह विस्तार क्षम्य नहीं है। दोनों परम्पराओं की कथा में उल्लेखनीय भेद तो यह है कि वैदिक परम्परा में क्रमशः राम को ब्रह्म का स्वरूप दे दिया जाता है और जैन परम्परा अवतारवाद की हिमायती नहीं है, अतः उसमें प्राकृत रामायणों से ले कर वर्तमान की रामायणों तक भी राम एक पुरुष महापुरुष व वासुदेव लक्ष्मण के ज्येष्ठ बन्धु बलदेव ही माने जाते हैं। वे महान् राजा थे इसलिये अर्चनीय नहीं अपितु जीवन के अन्त में उन्होंने मुनित्व धर्म स्वीकार किया और सर्वज्ञ होकर मोक्षधाम पहुंचे इसलिये वे जैन जगत् के अर्चनीय और उपासनीय हैं। वैदिक परम्परा में राम-कथा का आदि ग्रन्थ वाल्मीकि रामायण है। उसके बाद ही यह कथा महाभारत व अन्य पुराण ग्रन्थों में आई, ऐसा माना जाता है। वाल्मीकि ने राम को एक महामानव के रूप में ही प्रस्तुत किया है। आदि से अन्त तक राम एक मानव रहते हैं। उनमें ईश्वरत्व का आरोप कवि ने कहीं नहीं होने दिया है। अध्यात्म रामायण में राम के ब्रह्मत्व की झांकी मिलती है और भक्त कवि तुलसी के राम चरित मानस में तो 'सिया राम मय सब जग जानि' का आदि से अन्त तक निर्वाह मिलता है। आज के बुद्धि-प्रधान युग में जैन रामायणें बुद्धिगम्यता की दिशा में अधिक प्रशस्त मानी गई हैं। वहां अधिकांश घटनाएं स्वाभाविक और सम्भव रूप में मिलती हैं। उदाहरणार्थ—वैदिक रामायणों में रावण के दश मुख माने गये हैं, इसीलिए दशकन्धर, दशानन दशमुख आदि नाम उसके प्रचलित हुए हैं ऐसा कहा जाता है। जैन रामायणों में रावण के दशानन कहलाने का वर्णन इस प्रकार है—बचपन में रावण एक बार खेलते-खेलते भण्डार में पहुंच गया। वहां उसे तोयदवाहन का हार मिल गया। उसमें नौ मणियां जड़ी हुई थीं जिनमें से प्रत्येक मणि में पहनने वाले का मुख प्रतिबिम्बित होता था। रावण ने बाल-लीला में उसे उठा कर पहन लिया और तभी से लोग उसे दशानन कहने लगे।[1] कुछ एक जैन रामायणों के प्रारम्भ में ही वैदिक रामायणों में कही गई अस्वाभाविक बातों की आलोचना की गई है। स्वयंभूदेव पउमचरिउ में श्रेणिक भगवान् महावीर से राम

१ वालहिं रयण-मुहइं समुद्दिट्ठइं। णं णहबिम्बइं गुरु-वरिद्धिकइ।
देक्खेप्पिणु ताइं महालणइं थिर-तारइं तरलइं लोयणइं।
तें बहमुह पडिंव बलेल किउ दसाणणु तेण वलिद्धि पउ॥

—१।६।४

कथा कहने का अनुरोध करते हैं और जिज्ञासा के रूप मे वैदिक परम्परा मे चलनेवाली असगतियो को भी प्रस्तुत करते हैं। उनमे मुख्य जिज्ञासाए हैं—रावण के दशमुख और वीस हाथ कैसे हैं? कुम्भकरण छ महीने तक कैसे सोता था और करोडो महिष कैसे खा जाता था? कर्म ने पृथ्वी को अपनी पीठ पर धारण किया तो वह स्वय कहा था? रावण की पत्नी मन्दोदरी को विभीषण ने अपनी पत्नी कैसे वना लिया आदि।[1] इस प्रकार राम की अवतारवादिता और विविध अस्वाभाविकताओ को लेकर जैन और वैदिक परम्परा की राम-कथा मे बहुत सारे मौलिक भेद आ जाते हैं।

वैदिक रामायणो मे कथा-भेद

रामायण का कथा-भेद एकमात्र परम्परा-भेद पर ही आधारित है, ऐसी वात नही है। एक-एक परम्परा मे भी राम-कथा की विभिन्न धाराए हैं। प्रत्येक रचयिता प्राय कुछ न कुछ अपनी ओर से जोडता ही है। कवि इसे अपना मौलिक अधिकार भी मानता है। सीता को रावण किस प्रकार उठा कर ले गया, इस विषय मे कवियो ने अपनी सूझ-बूझ के अनुसार नाना युक्तिया काम मे ली। सीता सती थी। स्वेच्छा से ही रावण के साथ जाने के लिए चरण नही वढा सकती थी। रावण बलात् उसे उठाकर ले जाता है, तो पर पुरुष के स्पर्श-दोष से वह दूषित होती है। इस सम्बन्ध मे सबसे निराली उक्ति यह है कि सीता जिस झोपडी मे रहती थी, रावण पृथ्वी खण्ड के साथ उस झोपडी को ज्यो का त्यो उठाकर ले गया।

---

१ पणवेप्पिणु जिणु तगय-मणेण। पुणु पुच्छिउ गोत्तमसामि तेण॥
परमेसर पर-सासणेंहि सुव्वय विवरेरी।
कहे जिण-सासणे केम थिय कह राहव-केरी॥
जगे लोएंहि ढक्करिवन्तएंहि। उप्पाइउ भन्तिउ भन्तएंहि॥
जइ कुम्मे धरियउ धरणि-वोढु। तो कुम्मु पडन्तउ केण गीढु॥
जइ रामहो तिहुअणु उवरे माइ। तो रावणु कहिं तिय लेवि जाइ॥
अण्णु वि खरदूसरण-समरे देव। पहु जुज्झइ भिच्चु कॅव॥
किह तियमइ-कारणे कपिवरेण। वाइज्जइ वालि सहोयरेण॥
किह वाणर गिरिवर उव्वहन्ति। वन्धेवि मयरहरु समुत्तरन्ति॥
किह रावणु दहमुहु वीस हत्थु। अमराहिव-भुव-वन्धण समत्थु॥
वरिसद्ध सुअइ किह कुम्भयण्णु। महिसाकोडिहिं मिण धाइ अण्णु॥
जें परिसेसिउ दहवयणु। पर-णारीहिं समणु।
सो मन्दोवरि जणणि-सम, केइ लेइ विहीसणु॥

—विज्जाहरकाण्ड, संधि ६-१०

यह कथा भेद आचार्य श्री तुलसी ने स्पष्ट नहीं किया है, परन्तु जैन और वैदिक रामायणों का यह परम्परागत भेद है। दोनों परम्पराओं की राम-कथा में आदि से अन्त तक एकरूपता भी है तो आदि से अन्त तक अनेकरूपता भी। सभी पात्रों के धार्मिक आधार तो बदल ही जाते हैं, साथ-साथ उनके कथान्तर घटना प्रसंग भी। दोनों परम्पराओं की राम-कथा का तुलनात्मक अध्ययन अवश्य एक रोचक और ज्ञानवर्धक विषय बनता है परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में वह विस्तार क्षम्य नहीं है। दोनों परम्पराओं की कथा में उल्लेखनीय भेद तो यह है कि वैदिक परम्परा में अन्ततः राम को ब्रह्म का स्वरूप दे दिया जाता है और जैन परम्परा अवतारवाद की हिमायती नहीं है, अतः उसमें प्राकृत रामायणों से ले कर वर्तमान की रामायणों तक भी राम एक पुरुष महापुरुष व वासुदेव लक्ष्मण के ज्येष्ठ बन्धु बलदेव ही माने जाते हैं। वे महान् राजा थे इसलिये अर्चनीय नहीं अपितु जीवन के अन्त में उन्होंने मुनित्व धर्म स्वीकार किया और सफल होकर मोक्षधाम पहुंचे इसलिये वे जैन जगत् के अर्चनीय और उपासनीय हैं। वैदिक परम्परा में राम-कथा का आदि ग्रन्थ वाल्मीकि रामायण है। उसके बाद ही यह कथा महाभारत व अन्य पुराण ग्रन्थों में आई, ऐसा माना जाता है। वाल्मीकि ने राम को एक महामानव के रूप में ही प्रस्तुत किया है। आदि से अन्त तक राम एक मानव रहते हैं। उनमें ईश्वरता का आरोप कवि ने कहीं नहीं होने दिया है। आध्यात्म रामायण में राम के ब्रह्मरूप की झांकी मिलती है और भक्त कवि तुलसी के राम चरित मानस में तो 'सिया राम मय सब जग जानि' का आदि से अन्त तक निर्वाह मिलता है। आज के बुद्धि-प्रधान युग में जैन रामायणें बुद्धिगम्यता की दिशा में अधिक प्रशस्त मानी गई हैं। वहां अधिकांश घटनाएं स्वाभाविक और सम्भव रूप में मिलती हैं। उदाहरणार्थ—वैदिक रामायणों में रावण के दश मुख माने गये हैं, इसीलिए दशकन्धर, दशानन, दशमुख आदि नाम उसके प्रचलित हुए हैं ऐसा कहा जाता है। जैन रामायणों में रावण के दशानन कहलाने का वर्णन इस प्रकार है—बचपन में रावण एक बार खेलते-खेलते भण्डार में पहुंच गया। वहां उसे तोयदवाहन का हार मिल गया। उसमें नौ मणियां जड़ी हुई थीं जिनमें से प्रत्येक मणि में पहनने वाले का मुख प्रतिबिम्बित होता था। रावण ने बाल-लीला में उसे उठा कर पहन लिया और तभी से लोग उसे दशानन कहने लगे।[1] कुछ एक जैन रामायणों के प्रारम्भ में ही वैदिक रामायणों में कही गई अस्वाभाविक बातों की आलोचना की गई है। स्वयंभूरचित पउमचरिउ में श्रेणिक भगवान् महावीर से राम

---

१ पडिबिंबिउ रयण-मुहइं णवहिं। दं वहुविम्बइं मुण्णरिपिण्ड।
पेक्खेप्पिणु ताई महाभुअइं सिर-ताराइं तरणइं णीम्मलइं।
तें रावणु भणिउ [illegible] जण ॥

—१।१।४

बारह वर्ष पूरे होने पर राम राजधानी मे आये। उनका राज्याभिषेक हुआ। अपनी बहिन सीता के साथ उन्होंने ब्याह कर लिया। सोलह हजार वर्ष तक राज्य करते रहे। उस जन्म मे स्वय बुद्ध राम थे। बुद्ध के पिता राजा शुद्धोदन दशरथ थे। उनकी माता महामाया राजा दशरथ की प्रथम पटरानी थी। बुद्ध की पत्नी सीता थी। उनके प्रधान शिष्य आनन्द भरत थे और सारिपुत्त लक्ष्मण।

दशरथ जातक की राम-कथा मे सबसे विलक्षण बात राम की अपनी सगी बहिन सीता के साथ विवाह करने की है।

ग्रन्थकार ने इस विवाह सम्बन्ध को हीन भावना से नही लिखा है। इसका कारण यह हो सकता है कि विभिन्न देश कालो मे विवाह सम्बन्ध की विविध प्रणालिया प्रचलित रही है। जैन मान्यता के अनुसार यौगलिक जीवन मे सगे भाई बहिन ही विवाह-अवस्था पाकर दाम्पतिक जीवन मे बदल जाते थे। ऐतिहासिक धारणा के अनुसार शाक्य वशीय राज परिवारो मे राजवश की शुद्धता सुरक्षित रखने के लिये, भाई और बहिन को भी परस्पर ब्याह दिया जाता था। बुद्ध स्वय शाक्य वशी थे। अत उनके पूर्व जन्म के वृत्तो मे इस प्रकार के उल्लेख का होना नितान्त अस्वाभाविक नही रह जाता।

जैन रामायणों मे कथा-भेद

जैन रामायणो मे भी राम-कथा के दो रूप मिलते हैं, एक विमलसूरि कृत पउमचरिय व रविषेण कृत पद्मचरित्र का और दूसरा गुणभद्राचार्य के उत्तरपुराण का। प्रथम परम्परा जैनो मे आजकल सर्वमान्य और सवविदित जैसी है। उत्तर पुराण की राम-कथा अद्भुत रामायण की याद दिला देनेवाली है। उसमे बताया गया है—राजा दशरथ वाराणसी के राजा थे। राम की माता का नाम सुबाला और लक्ष्मण की माता का नाम केकेयी था। भरत और शत्रुघ्न की माता का नामोल्लेख ही नही है। किसी अन्य रानी से उत्पन्न हुए, ऐसा लिखा है। सीता मन्दोदरी के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। नैमित्तिको ने उसके सम्बन्ध मे रावण के सामने भविष्य वाणी की कि आगे चलकर यह कुल नाशकारिणी होगी। रावण ने अपनी पुत्री सीता को मन्जूषा मे रखवाकर मिथिला के आस-पास जमीन मे गडवा दिया। सयोगवश हल की नोक मे उलझ जाने से वह जनक राजा को मिल गई। जनक ने उसे पुत्रीवत् पालापोषा। सीता जब विवाह योग्य हुई तो जनक ने एक यज्ञ किया। राम-लक्ष्मण को वहा आग्रहपूर्वक बुलवाया और राम के साथ सीता का विवाह भी कर दिया। यज्ञ के समय रावण को आमन्त्रण नही भेजा गया, इससे वह अत्यन्त क्षुब्ध हो गया। आगे चलकर नारद के द्वारा उसने सीता के रूप की चर्चा भी सुनी और वह उसे उठा ले गया।

इस रामायण मे राम-वनवास का कोई वर्णन नही है। वाराणसी के निकट

वैदिक परम्परा में वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण, अद्भुत रामायण, तुलसी रामायण आदि अनेकों रामायण ग्रन्थ लिखे गये हैं। अद्भुत रामायण का कथा-भेद बहुत असाधारण है। सीता की उत्पत्ति के विषय में उसमें लिखा गया है—गृत्समद नामक एक ऋषि दण्डकारण्य में रहते थे। उनकी स्त्री चाहती थी कि मेरे गर्भ से साक्षात् लक्ष्मी स्वरूपा कन्या उत्पन्न हो। उसके आग्रह पर ऋषि उसी अनुष्ठान में लगे। वे प्रतिदिन दूध को अभिमंत्रित कर घड़े में डालते थे। एक दिन रावण इसी वन प्रदेश में आ गया। उसने ऋषि पर विजय प्राप्त करना चाहा। अतः ऋषि के शरीर में बाण की नोक चुभा चुभा कर बूंद-बूंद करके रक्त निकाला और उस दूध के घड़े को पूरा भर लिया। वह घड़ा उसने मन्दोदरी को लाकर दिया और कहा—ध्यान रखना यह विषकुम्भ है। मन्दोदरी उन दिनों रावण से अप्रसन्न थी। उसने सोचा—मेरा पति अन्य स्त्रियों के साथ रमण करता है, ऐसी स्थिति में मुझे मर जाना ही अच्छा है। उसने वह रक्त मिश्रित दूध पी लिया। उससे वह मरी तो नहीं प्रत्युत गर्भवती हो गई। पति की अनुपस्थिति में सगर्भा हो जाने से वह उसे प्रकट नहीं कर पाई। प्रसव-काल में वह विमान द्वारा कुरुक्षेत्र में चली गई और वहां सीता का जन्म दिया। जन्मते ही उसे उसने जमीन में गाड़ दिया और पुनः लंका लौट आई। हल जोतने की क्रिया में सीता जनक के हाथ लगी। उन्होंने उसे पुत्री मानकर पाला-पोसा।

बौद्ध रामायण में

बौद्धों के जातक ग्रन्थ भी प्राचीन माने जाते हैं। उनमें बुद्ध के प्राक् जीवन की कथाएं लिखी गई हैं। दशरथ जातक में राम-कथा का सविस्तार वर्णन मिलता है। उस जातक कथा के अनुसार भगवान् बुद्ध ही अपने किसी एक जन्म में राम थे। उनका जीवन-वृत्त वहां निराले प्रकार का ही बताया गया है। दशरथ काशी नगरी के राजा थे। उनके सोलह हजार रानियां थीं। मुख्य रानी से राम, लक्ष्मण दो पुत्र और सीता नामक कन्या उत्पन्न हुई। कालान्तर में उस पटरानी की मृत्यु हो गई। अन्य रानी पटरानी बनी। उससे भरत नामक पुत्र हुआ। वह उसे राज्य दिलाना चाहती थी। राजा ने यह सोच कर कि रानी कहीं इन तीनों का अहित न कर दे, उन्हें बारह वर्षों के लिये वनवास भेज दिया। दोनों भाई अपनी बहिन सीता को लेकर हिमालय चले गये। वहां एक आश्रम बनाकर रहने लगे। नौ वर्ष बाद राजा दशरथ की मृत्यु हो गई। मंत्रियों के कहने से भरत राम-लक्ष्मण और सीता को लाने के लिये हिमालय पर उनके आश्रम में आये। उन्होंने राजधानी में चल कर राज्य सम्भालने के लिए कहा। राम ने कहा—जब तक बारह वर्ष पूरे नहीं हो लेते तब तक हम राजधानी में नहीं आयेंगे। अन्त में भरत राम की पादुकाओं को लेकर नगरी में आये। उन्हें सिंहासन पर स्थापित कर अपना राज काज चलाने लगे।

बारह वर्ष पूरे होने पर राम राजधानी मे आये। उनका राज्याभिषेक हुआ। अपनी बहिन सीता के साथ उन्होंने ब्याह कर लिया। सोलह हजार वर्ष तक राज्य करते रहे। उस जन्म मे स्वय बुद्ध राम थे। बुद्ध के पिता राजा शुद्धोदन दशरथ थे। उनकी माता महामाया राजा दशरथ की प्रथम पटरानी थी। बुद्ध की पत्नी सीता थी। उनके प्रधान शिष्य आनन्द भरत थे और सारिपुत्त लक्ष्मण।

दशरथ जातक की राम-कथा मे सबसे विलक्षण बात राम की अपनी सगी बहिन सीता के साथ विवाह करने की है।

ग्रन्थकार ने इस विवाह सम्बन्ध को हीन भावना से नही लिखा है। इसका कारण यह हो सकता है कि विभिन्न देश कालों मे विवाह सम्बन्ध की विविध प्रणालिया प्रचलित रही हैं। जैन मान्यता के अनुसार यौगलिक जीवन मे सगे भाई बहिन ही विवाह-अवस्था पाकर दाम्पतिक जीवन मे बदल जाते थे। ऐतिहासिक धारणा के अनुसार शाक्य वशीय राज परिवारों मे राजवश की शुद्धता सुरक्षित रखने के लिये, भाई और बहिन को भी परस्पर ब्याह दिया जाता था। बुद्ध स्वय शाक्य वशी थे। अत उनके पूर्व जन्म के वृत्तो मे इस प्रकार के उल्लेख का होना नितान्त अस्वाभाविक नही रह जाता।

जैन रामायणों मे कथा-भेद

जैन रामायणो मे भी राम-कथा के दो रूप मिलते हैं, एक विमलसूरि कृत पउमचरिय व रविषेण कृत पद्मचरित्र का और दूसरा गुणभद्राचार्य के उत्तरपुराण का। प्रथम परम्परा जैनो मे आजकल सर्वमान्य और सर्वविदित जैसी है। उत्तर पुराण की राम-कथा अद्भुत रामायण की याद दिला देनेवाली है। उसमें बताया गया है—राजा दशरथ वाराणसी के राजा थे। राम की माता का नाम सुबाला और लक्ष्मण की माता का नाम केकेयी था। भरत और शत्रुघ्न की माता का नामोल्लेख ही नहीं है। किसी अन्य रानी से उत्पन्न हुए, ऐसा लिखा है। सीता मन्दोदरी के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। नैमित्तिको ने उसके सम्बन्ध मे रावण के सामने भविष्य वाणी की कि आगे चलकर यह कुल नाशकारिणी होगी। रावण ने अपनी पुत्री सीता को मञ्जूषा मे रखवाकर मिथिला के आस-पास जमीन मे गड़वा दिया। सयोगवश हल की नोक मे उलझ जाने मे वह जनक राजा को मिल गई। जनक ने उसे पुत्रीवत् पालापोषा। सीता जब विवाह योग्य हुई तो जनक ने एक यज्ञ किया। राम-लक्ष्मण को वहा आग्रहपूर्वक बुलवाया और राम के साथ सीता का विवाह भी कर दिया। यज्ञ के समय रावण को आमन्त्रण नही भेजा गया, इससे वह अत्यन्त क्षुब्ध हो गया। आगे चलकर नारद के द्वारा उसने सीता के रूप की चर्चा भी सुनी और वह उसे उठा ले गया।

इस रामायण मे राम-वनवास का कोई वर्णन नही है। वाराणसी के निकट

ही चित्रकूट नामक वन से रावण सीता को ले गया था। सीता को पुनः वापस लेने की और अग्नि-परीक्षा की घटना का भी इस रामायण में कोई उल्लेख नहीं है। लक्ष्मण एक असाध्य रोग से पीड़ित होकर शरीर छोड़ देते हैं। राम इस घटना से दुःखित होकर अनेक राजाओं और अपनी सीता आदि रानियों के साथ जैनी दीक्षा ले लेते हैं।

गुणभद्राचार्यकृत उत्तरपुराण की यह राम-कथा श्वेताम्बर सम्प्रदाय में प्रचलित नहीं है। दिगम्बर परम्परा में राम-कथा की एक धारा बह रही है। महाकवि पुष्पदन्त ने भी अपने उत्तरपुराण में यही राम-कथा लिखी है। कन्नड़ की जैन रामायण चामुंड राय-पुराण में भी राम कथा की इसी परम्परा को अपनाया गया है। दिगम्बर समाज में भी यह परम्परा विरल रूप से रही है। मुख्य परम्परा तो श्वेताम्बर व दिगम्बर दोनों समाजों में पउमचरियं और पद्मचरित वाली राम-कथा की ही रही है।

इस प्रकार जैन बौद्ध और वैदिक इन तीनों ही परम्पराओं के कथा भेद की बहुत ही सरस और रोचक कहानी है।

काव्य-समीक्षा

अग्नि-परीक्षा का कथा प्रसंग मूलतः विमलसूरि कृत पउमचरियं की रामायण परम्परा से सम्बद्ध है। जैन पाठकों के लिये अग्नि-परीक्षा का कथा प्रसंग चिर परिचित-सा है। इतर पाठकों के लिये सीता के सहोदर भामण्डल अरण्य-वास का संरक्षक बन्धु राजा वज्रजंघ आदि कुछ एक पात्र नितान्त नवीन ही होंगे। तथापि कथा-वस्तु में कोई मौलिक भेद नहीं है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त का महाकाव्य साकेत अयोध्यागमन के प्रसंग पर पूर्ण होता है और आचार्य श्री तुलसी का यह प्रणीत काव्य अग्नि-परीक्षा इसी प्रसंग से प्रारम्भ होता है। दोनों ही काव्यों की भाषा सरल और सरस हिन्दी है। दोनों काव्य मिलकर मानों समग्र रामायण के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध बन जाते हैं। साकेत के अन्तिम प्रसंग व अग्नि-परीक्षा के आदि प्रसंग दोनों काव्यों की रचना शैली को परखने के अच्छे उदाहरण बनते हैं। साकेत के राम और भरत परस्पर मिलते हैं—

> वर विमान से कूद पड़े वे ज्यों पुरुषोत्तम
> मिले भरत से राम क्षितिज में सिन्धु-गगन सम।
> 'उठ भाई, तुल सका न तुझसे राम खड़ा है
> तेरा पलड़ा बड़ा भूमि पर आज पड़ा है।
> गये चतुर्दश वर्ष थका मैं नहीं भ्रमण में
> जीता गिरि-वन-सिन्धु-पार लंका के रण में।

आन्त आज एकान्त-रूप-सा पाकर तुझको,
उठ, भाई, उठ, भेंट, अक मे भर ले मुझको।
मैं वन मे जाकर हसा, किन्तु घर आकर रोया,
खोकर रोये सभी, भरत, मैं पाकर रोया!'

अग्नि-परीक्षा के राम और भरत मिलते हैं—

आया अवनी पर अभ्र-यान
राघव-लक्ष्मण नीचे उतरे,
आ मातृभूमि के अचल मे
चेहरे निखरे उल्लास भरे,
बालकवत् दौड भरत भाई
गिर गए राम के चरणो मे,
खोए-खोए से हृदय हुए
पिछले सुमधुर सस्मरणो मे।
अविराम राम पादाम्बुज को
नयनाम्बुज से वे सीच रहे,
बाहो मे भरकर अवरज को
अग्रज ऊपर को खीच रहे,
शर पर रक्खा है वरद हस्त
अत्यन्त स्नेह से गले लगा,
भरतेश विरह सब भूल गए
अन्तर मे नव आह्लाद जगा।

एक दूसरे के प्रति, दोनो अनिमिष दृष्टि निहार रहे,
बहा-बहा पानी पलको से मन का भार उतार रहे।
मुखरित मोद, भावना मुखरित, किन्तु हो रही वाणी मौन,
आनन्दाब्धि निमज्जित मानस, दोनो मे कम वेसी कौन?

साकेत के राम चरणो मे गिरे भरत को उठाकर बाह भरने का अनुरोध करते हैं तो अग्नि-परीक्षा के राम—"बाहो मे भरकर अवरज को अग्रज ऊपर को खींच रहे" यो अपनी बाहो मे उसे भरने को ही प्रयत्नशील है। दोनो ही काव्यो की भावाभिव्यजना अपनी-अपनी स्थिति मे अप्रतिम हैं।

साकेत के राम कहते हैं कि तेरा पलडा भारी है। वह जमीन पर टिका है तो अग्नि-परीक्षा के राम, राज्य-ग्रहण के प्रसग पर कहते हैं—

इस सारी जनता ने तुझको नैसर्गिक शासक माना है।
हमने भी तेरा पूर्णतया अब सही रूप पहिचाना है।

ही चित्रकूट नामक वन से रावण सीता को ले गया था। सीता को पुनः वनवास देने की और अग्नि-परीक्षा की घटना का भी इस रामायण में कोई उल्लेख नहीं है। लक्ष्मण एक असाध्य रोग से पीड़ित होकर शरीर छोड़ देते हैं। राम इस घटना से दुःखित होकर अनेक राजाओं और अपनी सीता आदि रानियों के साथ जैनी दीक्षा ले लेते हैं।

गुणभद्राचार्यकृत उत्तरपुराण की यह राम-कथा श्वेताम्बर सम्प्रदाय में प्रच लित नहीं है। दिगम्बर परम्परा में राम-कथा की एक धारा यह रही है। महाकवि पुष्पदन्त ने भी अपने उत्तरपुराण में यही राम-कथा लिखी है। कन्नड़ की जैन रामायण चामुंड राय-पुराण में भी राम कथा की इसी परम्परा को अपनाया गया है। दिगम्बर समाज में भी यह परम्परा विरल रूप से रही है। मुख्य परम्परा तो श्वेता-म्बर व दिगम्बर दोनों समाजों में पउमचरिय और पद्मचरित्र वाली राम-कथा की ही रही है।

इस प्रकार जैन बौद्ध और वैदिक इन तीनों ही परम्पराओं के कथा भेद की बहुत ही सरस और रोचक कहानी है।

काव्य-समीक्षा

अग्नि-परीक्षा का कथा प्रसंग मूलतः विमलसूरि कृत पउमचरिय की रामायण परम्परा से सम्बद्ध है। जैन पाठकों के लिये अग्नि-परीक्षा का कथा-प्रसंग चिर परिचित-सा है। इतर पाठकों के लिये सीता के सहोदर भामण्डल मत्स्य-दास का संरक्षक बन्धु राजा वज्रजंघ आदि कुछ एक पात्र नितान्त नवीन ही होंगे। तथापि कथा-वस्तु में कोई मौलिक भेद नहीं है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त का महाकाव्य साकेत रामाभ्यागमन के प्रसंग पर पूर्ण होता है और आचार्य श्री तुलसी का यह नवीन काव्य अग्नि-परीक्षा इसी प्रसंग से आरम्भ होता है। दोनों ही काव्यों की भाषा सरस और सरल हिन्दी है। दोनों काव्य मिलकर मानों समग्र रामायण के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध बन जाते हैं। साकेत के अन्तिम प्रसंग व अग्नि-परीक्षा के आदि प्रसंग दोनों काव्यों की रचना शैली को परखने के अनूठे उदाहरण बनते हैं। साकेत के राम और भरत परस्पर मिलते हैं—

> भर विमान से कूद गरुड़ से ज्यों पुरुषोत्तम
> मिले भरत से राम क्षितिज में सिन्धु-गगन सम !
> 'रघु, भाई, तुम सखा न तुमसे राम बड़ा है
> देखो पन्नो बड़ा भूमि पर आज पड़ा है !
> गये चतुर्दश वर्ष वसा मैं नहीं भ्रमण में
> विचरा गिरि-वन-सिन्धु-पार लंका के रण में।

श्रान्त आज एकान्त-रूप-सा पाकर तुझको,
उठ, भाई, उठ, भेंट, अक मे भर ले मुझको!
मैं वन मे जाकर हसा, किन्तु घर आकर रोया,
खोकर रोये सभी, भरत, मैं पाकर रोया!'

अग्नि-परीक्षा के राम और भरत मिलते हैं—

आया अवनी पर अभ्र-यान
राघव-लक्ष्मण नीचे उतरे,
आ मातृभूमि के अचल मे
चेहरे निखरे उल्लास भरे,
बालकवत् दौड भरत भाई
गिर गए राम के चरणो मे,
खोए-खोए से हृदय हुए
पिछले सुमधुर सस्मरणो मे।
अविराम राम पादाम्बुज को
नयनाम्बुज से वे सींच रहे,
बाहो मे भरकर अवरज को
अग्रज ऊपर को खीच रहे,
शर पर रक्खा है वरद हस्त
अत्यन्त स्नेह से गले लगा,
भरतेश विरह सब भूल गए
अन्तर मे नव आह्लाद जगा।

एक दूसरे के प्रति, दोनो अनिमिष दृष्टि निहार रहे,
बहा-बहा पानी पलको से मन का भार उतार रहे।
मुखरित मोद, भावना मुखरित, किन्तु हो रही वाणी मौन,
आनन्दाब्धि निमज्जित मानस, दोनो मे कम बेसी कौन?

साकेत के राम चरणो मे गिरे भरत को उठाकर बाह भरने का अनुरोध करते हैं तो अग्नि-परीक्षा के राम—"बाहो मे भरकर अवरज को अग्रज ऊपर को खींच रहे" यों अपनी बाहो मे उसे भरने को ही प्रयत्नशील है। दोनों ही काव्यो की भावाभिव्यंजना अपनी-अपनी स्थिति मे अप्रतिम हैं।

साकेत के राम कहते हैं कि तेरा पलडा भारी है। वह जमीन पर टिका है तो अग्नि-परीक्षा के राम, राज्य-ग्रहण के प्रसग पर कहते हैं—

इस सारी जनता ने तुझको नैसर्गिक शासक माना है।
हमने भी तेरा पूर्णतया अब सही रूप पहिचाना है।

ही चित्रकूट नामक वन से रावण सीता को ले गया था। सीता को पुनः वनवास देने की और अग्नि-परीक्षा की घटना का भी इस रामायण में कोई उल्लेख नहीं है। लक्ष्मण एक असाध्य रोग से पीड़ित होकर शरीर छोड़ देते हैं। राम इस घटना से दुःखित होकर अनेक राजाओं और अपनी सीता आदि रानियों के साथ जैनी दीक्षा ले लेते हैं।

गुणभद्राचार्यकृत उत्तरपुराण की यह राम-कथा श्वेताम्बर सम्प्रदाय में प्रचलित नहीं है। दिगम्बर परम्परा में राम-कथा की एक धारा यह रही है। महाकवि पुष्पदन्त ने भी अपने उत्तरपुराण में यही राम-कथा लिखी है। कन्नड़ की जैन रामायण चामुंड राय-पुराण में भी राम कथा की इसी परम्परा को अपनाया गया है। दिगम्बर समाज में भी यह परम्परा विरल रूप से रही है। मुख्य परम्परा तो श्वेताम्बर व दिगम्बर दोनों समाजों में पउमचरियं और पद्मचरित वाली राम-कथा की ही रही है।

इस प्रकार जैन, बौद्ध और वैदिक इन तीनों ही परम्पराओं के कथा भेद की बहुत ही सरस और रोचक कहानी है।

काव्य-समीक्षा

अग्नि-परीक्षा का कथा प्रबंध मूलतः विमलसूरि कृत पउमचरियं की रामायण परम्परा से सम्बद्ध है। जैन पाठकों के लिये अग्नि-परीक्षा का कथा-प्रसंग चिर परिचित-सा है। इतर पाठकों के लिये सीता के सहोदर भामण्डल, लक्ष्मण-भ्रात का संवाद, रावण तथा कृतान्तवदन आदि कुछ एक पात्र नितान्त नवीन ही होंगे। तथापि कथा-वस्तु में कोई मौलिक भेद नहीं है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त का महाकाव्य साकेत अयोध्यागमन के प्रसंग पर पूर्ण होता है और आचार्य श्री तुलसी का यह प्रणीत काव्य अग्नि परीक्षा यहीं प्रसंग से प्रारम्भ होता है। दोनों ही काव्यों की भाषा सरल और सरस हिन्दी है। दोनों काव्य मिलकर मानों समग्र रामायण के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध बन जाते हैं। साकेत के अन्तिम प्रसंग व अग्नि-परीक्षा के आदि प्रसंग दोनों काव्यों की रचना शैली को परखने के अनूठे उदाहरण बनते हैं। साकेत के राम और भरत परस्पर मिलते हैं—

> तब विमान से कूद वेग से उतरे पुरुषोत्तम
> मिले भरत से राम क्षितिज में सिन्धु-गगन सम।
> "उठ भाई, तुल सका न तुमसे राम खड़ा है
> तेरा पलड़ा बड़ा भूमि पर आज पड़ा है!
> गये चतुर्दश वर्ष थका मैं नहीं भ्रमण में
> बिखरा गिरि-वन-सिन्धु-पार लंका के रण में।

श्रान्त आज एकान्त-रूप-सा पाकर तुझको,
उठ, भाई, उठ, भेंट, अक मे भर ले मुझको!
मैं वन मे जाकर हसा, किन्तु घर आकर रोया,
खोकर रोये सभी, भरत, मैं पाकर रोया!'

अग्नि-परीक्षा के राम और भरत मिलते हैं—

आया अवनी पर अभ्र-यान
राघव-लक्ष्मण नीचे उतरे,
आ मातृभूमि के अचल मे
चेहरे निखरे उल्लास भरे,
बालकवत् दौड भरत भाई
गिर गए राम के चरणो में,
खोए-खोए से हृदय हुए
पिछले सुमधुर सस्मरणों मे।
अविराम राम पादाम्बुज को
नयनाम्बुज से वे सींच रहे,
बाहो मे भरकर अवरज को
अग्रज ऊपर को खींच रहे,
शर पर रक्खा है वरद हस्त
अत्यन्त स्नेह से गले लगा,
भरतेश विरह सब भूल गए
अन्तर मे नव आह्लाद जगा।

एक दूसरे के प्रति, दोनो अनिमिष दृष्टि निहार रहे,
बहा-बहा पानी पलको से मन का भार उतार रहे।
मुखरित मोद, भावना मुखरित, किन्तु हो रही वाणी मौन,
आनन्दाब्धि निमज्जित मानस, दोनो मे कम वेसी कौन?

साकेत के राम चरणो मे गिरे भरत को उठाकर बाह भरने का अनुरोध करते हैं तो अग्नि-परीक्षा के राम—"बाहो मे भरकर अवरज को अग्रज ऊपर को खीच रहे" यों अपनी बाहो मे उसे भरने को ही प्रयत्नशील है। दोनो ही काव्यो की भावाभिव्यंजना अपनी-अपनी स्थिति मे अप्रतिम हैं।

साकेत के राम कहते हैं कि तेरा पलडा भारी हैं। वह जमीन पर टिका है तो अग्नि-परीक्षा के राम, राज्य-ग्रहण के प्रसग पर कहते हैं—

इस सारी जनता ने तुझको नैसर्गिक शासक माना है।
हमने भी तेरा पूर्णतया अब सही रूप पहिचाना है।

श्रान्त आज एकान्त-रूप-सा पाकर तुझको,
उठ, भाई, उठ, भेंट, अक मे भर ले मुझको!
मैं वन मे जाकर हसा, किन्तु घर आकर रोया,
खोकर रोये सभी, भरत, मैं पाकर रोया!'

अग्नि-परीक्षा के राम और भरत मिलते हैं—

आया अवनी पर अभ्र-यान
राघव-लक्ष्मण नीचे उतरे,
आ मातृभूमि के अचल मे
चेहरे निखरे उल्लास भरे,
बालकवत् दौड भरत भाई
गिर गए राम के चरणो मे,
खोए-खोए से हृदय हुए
पिछले सुमधुर सस्मरणो मे।
अविराम राम पादाम्बुज को
नयनाम्बुज से वे सीच रहे,
बाहो मे भरकर अवरज को
अग्रज ऊपर को खीच रहे,
शर पर रक्खा है वरद हस्त
अत्यन्त स्नेह से गले लगा,
भरतेश विरह सब भूल गए
अन्तर मे नव आह्लाद जगा।
एक दूसरे के प्रति, दोनो अनिमिष दृष्टि निहार रहे,
बहा-बहा पानी पलकों से मन का भार उतार रहे।
मुखरित मोद, भावना मुखरित, किन्तु हो रही वाणी मौन,
आनन्दाब्धि निमज्जित मानस, दोनो मे कम बेसी कौन?

साकेत के राम चरणो मे गिरे भरत को उठाकर बाह भरने का अनुरोध करते हैं तो अग्नि-परीक्षा के राम—"बाहो मे भरकर अवरज को अग्रज ऊपर को खींच रहे" यों अपनी बाहो मे उसे भरने को ही प्रयत्नशील है। दोनो ही काव्यो की भावाभिव्यजना अपनी-अपनी स्थिति मे अप्रतिम हैं।

साकेत के राम कहते हैं कि तेरा पलडा भारी है। वह जमीन पर टिका है तो अग्नि-परीक्षा के राम, राज्य-ग्रहण के प्रसग पर कहते हैं—

इस सारी जनता ने तुझको नैसर्गिक शासक माना है।
हमने भी तेरा पूर्णतया अब सही रूप पहिचाना है।

ही चित्रकूट नामक वन से रावण सीता को ले गया था। सीता को पुनः वनवास देने की और अग्नि-परीक्षा की घटना का भी इस रामायण में कोई उल्लेख नहीं है। लक्ष्मण एक असाध्य रोग से पीड़ित होकर शरीर छोड़ देते हैं। राम इस घटना से दुःखित होकर अनेक राजाओं और अपनी सीता आदि रानियों के साथ जैनी दीक्षा ले लेते हैं।

गुणभद्राचार्यकृत उत्तरपुराण की यह राम-कथा श्वेताम्बर सम्प्रदाय में प्रचलित नहीं है। दिगम्बर परम्परा में राम-कथा की एक धारा बह रही है। महाकवि पुष्पदन्त ने भी अपने उत्तरपुराण में यही राम-कथा लिखी है। कन्नड़ की चंप रामायण चामुंड राय-पुराण में भी राम कथा की इसी परम्परा को अपनाया गया है। दिगम्बर समाज में भी यह परम्परा विरल रूप से रही है। मुख्य परम्परा तो श्वेताम्बर व दिगम्बर दोनों समाजों में पउमचरियं और पद्मचरित वाली राम-कथा की ही रही है।

इस प्रकार जैन, बौद्ध और वैदिक इन तीनों ही परम्पराओं के कथा सब की बहुत ही सरस और रोचक कहानी है।

काव्य-समीक्षा

अग्नि-परीक्षा का कथा प्रसंग मूलतः विमलसूरि कृत पउमचरियं की रामायण परम्परा से सम्बद्ध है। जैन पाठकों के लिये अग्नि-परीक्षा का कथा प्रसंग चिर परिचित-सा है। इतर पाठकों के लिये सीता के सहोदर भामण्डल अरण्य-वास का संरक्षक बन्धु राजा वज्रजंघ आदि कुछ एक नाम नितान्त नवीन ही होंगे। तथापि कथा-वस्तु में कोई मौलिक भेद नहीं है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त का महाकाव्य साकेत अयोध्यागमन के प्रसंग पर पूर्ण होता है और आचार्य श्री तुलसी का यह प्रणीत काव्य अग्नि परीक्षा इसी प्रसंग से आरम्भ होता है। दोनों ही काव्यों की भाषा सरल और सरस हिन्दी है। दोनों काव्य मिलकर मानों समग्र रामायण के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध बन जाते हैं। साकेत के अन्तिम प्रसंग व अग्नि-परीक्षा के आदि प्रसंग दोनों काव्यों की रचना शैली का परखने के अनूठे उदाहरण बनते हैं। साकेत के राम और भरत परस्पर मिलते हैं—

उतर विमान से दूर चरण ले ज्यों पुरुषोत्तम
मिले भरत से राम क्षितिज में सिन्धु-गगन सम।
'उठ भाई तुल सका न तुझसे राम खरा है
तेरा पलड़ा बड़ा भूमि पर आज धरा है।
गये चतुर्दश वर्ष थका मैं नहीं भ्रमण में
किन्तु गिरि-वन-सिन्धु-पार लंका के रण में।

कर प्रजाजनों का संरक्षण तुमने भारी गौरव पाया।
मैं एक सिया को पूर्णतया वन में न सुरक्षित रख पाया।

राम को अपनी लघिमा व्यक्त करने की कैसी अनूठी उक्ति सूझी है।

इस प्रकार 'साकेत' और 'अग्नि-परीक्षा' ये दोनों काव्य रचना शैली और भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से एक दूसरे के बहुत कुछ निकट हैं।

अग्नि-परीक्षा सचमुच ही समालोचना की अग्नि-परीक्षा में निखर कर ऊपर आने वाली कृति है। हिन्दी साहित्य का यह एक अमर्य पाथेय है। प्रसंग-प्रसंग पर आचार्य श्री तुलसी ने अछूते भाव इसमें संजोये हैं।

एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह पातीं एक गुफा में दो सिंह नहीं रह पाते एक राज्य में दो संचालक नहीं रह पाते इन लोक सत्यों को लक्ष्यकर राम-लक्ष्मण के राज्य-संचालन के सम्बन्ध से आचार्यवर ने कितना सुन्दर कहा है—

एक गुफा में दो-दो मृगपति एक म्यान में दो तलवार
शासन एक उभय संचालक देख हो रहा विश्व अपार।

अवरज अग्रज की आज्ञा के बिना न करते कोई काम
परामर्श प्रत्येक बात में लेते लक्ष्मण का श्रीराम।

लोकापवाद के कारण राम सीता के परित्याग की बात कहते हैं तो लक्ष्मण जनमत का मदारी प्रवाह-मात्र ही कह देते हैं —

मत भाव से नम्र निवेदन चिन्तन करें दुबारा
उलटी सीधी बहती यों ही यह जनमत की धारा।

आचार्य विनोबा भावे का कहना है—गोस्वामी तुलसीदास अपने विख्यात ग्रन्थ रामचरित मानस में राम-सीता के विरह प्रसंगों का चित्रण बहुत ही संक्षेप में कर पाये हैं। राम और सीता का वियोग उनके लिए सर्वथा असह्य रहा है। उनकी लेखिनी उन्हें मिलाने में उतावली होकर चली है।[1] आचार्य श्री तुलसी अपने अग्नि-परीक्षा काव्य में सर्वथा इसके विपरीत चले हैं। वियोग और करुणा को सचमुच ही इन्होंने साकार बना दिया है। इस विषय पर उनकी लेखिनी बहुत लम्बी चली है।

गोस्वामी तुलसी अरण्य मुक्त सीता को दो ही चौपाइयों में वाल्मीकि के आश्रम में भेज देते हैं—

जागी सिया सकल दिसि देखा। नहिं रथ अरब नहीं कोइ लखा।
नहिं दुख प्रथम रहे है भाणा पुनि कोई कहन न कछत पमाणा।[2]

1 साप्ताहिक हिन्दुस्तान सन् १९६१ फरवरी ५ वर्ष ८ अंक १२ पृ. ४९ के आधार पर
2 तुलसी रामायण रामाश्वमेध लवकुशाख्यानम्—१ से ८

करुणा करति विपिन अति भारी, वाल्मीकि आये वनचारी।
पुत्री वाल्मीकि कह ज्ञानी, वन आवन निज चरित वखानी।

आचार्य श्री तुलसी अपने इस काव्य मे वियोग और करुणा को ही मुख्यता देते हैं। जैन कथा के अनुसार राम का सेनापति कृतान्तमुख अपने स्वामी की आज्ञा से सीता को रथ मे बिठाकर भीषण वन मे ले जाता है, यह कहकर कि राम वन-क्रीडा के लिए गये हैं, आपको भी वहा चलना है। उस सिंहनाद अटवी मे सेनापति और सीता के वार्तालाप मे वियोग और करुणा का वर्णन प्रारम्भ होता है। रथ के खडे होने ही चारो ओर देखकर सदिग्धता भरी आवाज मे सीता कहती है—

अरे बोलता क्यो नही, बता किधर है राम,
मुझे कहा लाया यहा, लेकर उनका नाम।

सेनापति अपने भृत्य जीवन को धिक्कारता हुआ कहता है—

मा मुझे कर दो क्षमा, मैं पूर्णत परतन्त्र हू,
समझ लो ! वस राम के, द्वारा प्रचालित यन्त्र हू।

भृत्य जीवन से भली है, मृत्यु ही ससार मे,
मैं नियन्त्रित यथा वन्दी, वन्द कारागार मे।

नही कृत्याकृत्य कुछ भी, सोच सकता भृत्य है,
जो कहे स्वामी वही बस, कृत्य उसका नित्य है।

दृष्टि के विपरीत उसका, बोलना भी पाप है,
दासता मनुजत्व का, सबसे बडा अभिशाप है।

असहाय सीता कहती है—

राम-राज्य मे सभी सुखी मैं ही दुखियारी,
कौन सुने मैं किसे कहू हा ! अपनी लाचारी।

वेदना पूरित मानस का कितना सुन्दर चित्रण है—

तो आहे भरती हुई फैक रही नि श्वास,
देख रही धरती कभी और कभी आकाश।

कभी मौन हो सोचती टिका हाथ पर शीश,
कभी चीख मे निकलती अन्तर मन की टीस।

सीता की वेदना से सारा अरण्य ही वेदनामय हो जाता है। हिंसक पशु भी क्लेश-कारण न होकर सीता के प्रति सवेदनाशील दिखाई देते हैं। सचमुच ही कवि

कर प्रजाजनों का संरक्षण तुमने भारी गौरव पाया।
मैं एक सिया को पूर्णतया वन में न सुरक्षित रख पाया।

राम को अपनी लघिमा व्यक्त करने की कैसी अनूठी उक्ति सूझी है।

इस प्रकार 'साकेत' और 'अग्नि-परीक्षा' ये दोनों काव्य रचना शैली और भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से एक दूसरे के बहुत कुछ निकट हैं।

अग्नि-परीक्षा सचमुच ही समालोचना की अग्नि-परीक्षा में निखर कर ऊपर आने वाली कृति है। हिन्दी साहित्य का यह एक अमर्त्य पाथेय है। प्रसंग-प्रसंग पर आचार्य श्री तुलसी ने अछूते भाव इसमें संजोये हैं।

एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह पाती एक गुफा में दो सिंह नहीं रह सकते एक राज्य में दो संचालक नहीं रह पाते इन लोक सत्यों को उलटकर राम-लक्ष्मण के राज्य-संचालन के सम्बन्ध में आचार्यवर ने कितना सुन्दर कहा है—

एक गुफा में दो-दो नृपपति एक म्यान में दो तलवार
शासन एक उभय संचालक देख रहा जग विस्मय अपार।
लक्ष्मण अग्रज की आज्ञा के बिना न करते कोई काम
परामर्श प्रत्येक बात में लेते लक्ष्मण का श्रीराम।

लोकापवाद के कारण राम सीता के परित्याग की बात कहते हैं तो लक्ष्मण जनमत को पहाड़ी प्रवाह-मात्र ही कह देते हैं—

भ्रात! नाथ से नम्र निवेदन चिन्तन करें दुबारा
उलटी सीधी बहती यों ही यह जनमत की धारा।

आचार्य विनोबा भावे का कहना है—गोस्वामी तुलसीदास अपने विशाल ग्रन्थ रामचरित मानस में राम-सीता के विरह प्रसंगों का चित्रण बहुत ही संक्षेप में कर पाये हैं। राम और सीता का वियोग उनके लिए सर्वथा असह्य रहा है। उनकी लेखिनी उन्हें मिलाने में उतावली होकर चली है।[1] आचार्य श्री तुलसी अपने अग्नि-परीक्षा काव्य में सर्वथा इसके विपरीत चले हैं। वियोग और करुणा को सचमुच ही उन्होंने साकार बना दिया है। इस विषय पर उनकी लेखिनी बहुत लम्बी चली है।

गोस्वामी तुलसी अरण्य-मुक्त सीता को दो ही चौपाइयों में वाल्मीकि के आश्रम में भेज देते हैं—

जागी सिया सकल दिसि देखा नहिं रथ लखन नहीं कहिं देखा।
सहि दुख प्रथम रहे हैं प्राणा पुनि सोई बहुत न कछुक पयाना।[2]

1 साप्ताहिक हिन्दुस्तान सन् १९६१ फरवरी ५ वर्ष ५ अंक १५, पृ. ५८ के आधार पर
2 तुलसी रामायण रामाश्वमेध लवकुशाख्यानम्—५ से ८

करुणा करति विपिन अति भारी, वाल्मीकि आये वनचारी।
पुत्री वाल्मीकि कह ज्ञानी, वन आवन निज चरित बखानी।

आचार्य श्री तुलसी अपने इस काव्य मे वियोग और करुणा को ही मुख्यता देते हैं। जैन कथा के अनुसार राम का सेनापति कृतान्तमुख अपने स्वामी की आज्ञा से सीता को रथ मे बिठाकर भीषण वन मे ले जाता है, यह कहकर कि राम वन-क्रीडा के लिए गये हैं, आपको भी वहा चलना है। उस सिहनाद अटवी मे सेनापति और सीता के वार्तालाप से वियोग और करुणा का वर्णन प्रारम्भ होता है। रथ के खडे होते ही चारो ओर देखकर सदिग्धता भरी आवाज मे सीता कहती है—

अरे बोलता क्यो नही, बता किधर हैं राम,
मुझे कहा लाया यहा, लेकर उनका नाम।

सेनापति अपने भृत्य जीवन को धिक्कारता हुआ कहता है—

मा मुझे कर दो क्षमा, मैं पूर्णत परतन्त्र हू,
समझ लो ! बस राम के, द्वारा प्रचालित यन्त्र हू।

भृत्य जीवन से भली है, मृत्यु ही ससार मे,
मैं नियन्त्रित यथा बन्दी, बन्द कारागार मे।

नही कृत्याकृत्य कुछ भी, सोच सकता भृत्य है,
जो कहे स्वामी वही बस, कृत्य उसका नित्य है।

दृष्टि के विपरीत उसका, बोलना भी पाप है,
दासता मनुजत्व का, सबसे बडा अभिशाप है।

असहाय सीता कहती है—

राम-राज्य मे सभी सुखी मैं ही दुखियारी,
कौन सुने मैं किसे कहू हा ! अपनी लाचारी।

वेदना पूरित मानस का कितना सुन्दर चित्रण है—

यो आहे भरती हुई फैंक रही नि श्वास,
देख रही धरती कभी और कभी आकाश।

कभी मौन हो सोचती टिका हाथ पर शीश,
कभी चीख मे निकलती अन्तर मन की टीस।

सीता की वेदना से सारा अरण्य ही वेदनामय हो जाता है। हिंसक पशु भी क्लेश-कारण न होकर सीता के प्रति सवेदनाशील दिखाई देते है। सचमुच ही कवि

की कामिनी वेदना-विगलन के शिखर पर पहुँच गई है—

> उस देख बिलखते आनन को सारी वसुमती रोती है
> उन विकल वन्य जीवों के भी मानस में पीड़ा होती है।
> करते वे मूक सहानुभूति सब घेर सती को बैठे हैं
> कर रहे प्रदर्शित सहज स्नेह संक्लेश न किंचित् देते हैं।

गोस्वामी तुलसी और आचार्य श्री तुलसी के बीच शताब्दियों की अवधि है। इस बीच सामाजिक मूल्यों में नाना उतार-चढ़ाव आ चुके हैं। रामचरित मानस की सीता आज के पाठक को दीन लगने लगती है। राम द्वारा अपने ऊपर किये गये असभ्य व्यवहारों पर भी उसके मुंह से कोई ऐसी बात नहीं निकलती जिस से नारीत्व ऊपर उठता हो। रावण विजय के पश्चात् सीता-राम के सम्मुख लाई जाती है। मिलन की उस मधुर बेला में भी राम उसके प्रति दुर्वाक्य कहते हैं। उसके सतीत्व का प्रमाण मांगते हैं—

> तेहि कारण करुणानिधान कहे कछुक दुर्बाद
> सुनत जातुधानी सकल लागीं करन बिषाद।

—लंकाकाण्ड २७

गोस्वामी जी 'प्रभु के बचन सीस धरि सीता' कहकर कथा को आगे बढ़ा देते हैं पर बिचारी अपमानित सीता को कुछ भी कहने का अवसर नहीं देते। भयानक विपिन में निष्कारण ही राम सीता को निर्वासिता कर छुड़ा देते हैं पर गोस्वामीजी की सीता तो राम के प्रति मूक ही रहती है। लव-कुश और राम-लक्ष्मण के युद्ध के पश्चात् राम की अनुज्ञा समझकर सीता उनसे बिना मिले ही धरती में समा जाती है। अग्नि-परीक्षा की सीता पत्नी धर्म की मर्यादाओं को अक्षुण्ण रखती हुई पुरुष के कर्तव्यों पर भी निगाह उठा लेती है। लव-कुश-मिलन के पश्चात् जब सुग्रीव राम की ओर से उसे अयोध्या आने को आमन्त्रित करते हैं, तब पति-भक्ता सीता के हृदय की अनेकों तहों के नीचे दबा स्वाभिमान भी उसकी विरोधपूर्ण वाणी के साथ फूट पड़ता है। वह सुग्रीव को तपाक से कह देती है—

> कपिपति मैं भूली नहीं वह भीषण अपकार
> नहीं और अब चाहिए स्वामी का सत्कार।
> हाथ जोड़ती दूर से उनको मैं महाराज
> क्या करना अब शेष है बुला रहे जो आज।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि गोस्वामीजी द्वारा नारी-जीवन जो अनावश्यक रूप से दब-सा गया है वह अग्नि-परीक्षा में आचार्य श्री तुलसी द्वारा पर्याप्त रूप से

ऊपर उठा दिया गया है।

अग्नि-परीक्षा के अवसर पर सीता कहती है—

जीवन की यह स्वर्णिम वेला मेरे अग्नि स्नान की,
वलिदानो से रक्षा होगी नारी के सम्मान की।

अग्नि परीक्षा मे प्रसग-प्रसग पर कही गई बातें शाश्वत सूक्तिया भी बन गई हैं। प्रसग विशेष पर कहा गया है —

जो औरो को दु ख पहुचावे सुख मे न उन्हे वसते देखा,
जो औरो का जी तडफाते उनको न कभी हसते देखा।

सीता अग्नि-परीक्षा के लिये उद्यत हो चली है। दर्शको के मन मे करुणा का ज्वार उमड पडा है। उनकी अनुभूति को कवि ने कितने सुन्दर शब्दो मे बान्धा है —

जब से इस घर मे आई उसने दु ख ही दु ख देखा,
पता नही बेचारी के कैसी कर्मों की रेखा।

कुल मिलाकर अग्नि-परीक्षा साहित्यिकता और धार्मिकता के सगम का एक अनूठा ग्रन्थ है। इस मे श्रद्धाशील लोग राम और सीता के आदर्शों को सहज ही हृदयगम कर सकते हैं और साहित्यान्वेषी थिरकती साहित्यिकता का पान कर अपने आप को तृप्त कर सकते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रणयन आचार्यवर ने स० २०१७ के राजनगर चतुर्मास मे किया। कलकत्ता चतुर्मास के पश्चात् अपनी दो सहस्र मील की ऐतिहासिक पदयात्रा पूर्ण कर आचार्य श्री राजनगर (राजस्थान) पहुचे थे। चरणो का विश्राम मस्तिष्क की यात्रा बन गया। तेरापथ द्विशताब्दी समारोह की व्यस्तता मे भी आचार्य श्री ने अग्नि-परीक्षा की रचना के लिए अनोखा समय निकाला। प्रार्थना के पश्चात् आप दश-दश बजे तक रात को सघन वृक्ष की छाया में बैठकर पद्य-रचना करते। इस प्रकार समय बचा-बचा कर आपने प्रस्तुत रचना सम्पन्न की। अन्धेरी रातो मे भी आपका कार्य अबाध गति से चलता रहा। मुनिश्री सागरमलजी 'श्रमण' तथा दिवगत श्री सोहनलाल सेठिया इस नूतन प्रयोग में अभिन्न सहयोगी रहे। मुनि श्री सागरमलजी की तमो-लेखकता और श्री सोहनलाल सेठिया की स्मरण-प्रखरता इस ग्रन्थ-प्रणयन का इतिहास बन गई। इस ग्रन्थ-प्रणयन में सेवाभावी मुनिश्री चम्पालालजी आचार्यवर के प्रेरणा-स्रोत थे।

मैं अपना सौभाग्य समझता हू कि आचार्यवर की कृतियों के साथ मेरा भी सम्बन्ध जुडा है। सम्पादन कार्य में बचपन से ही मेरी रुचि रही है। उसका आरम्भ हस्तलिखित जय ज्योति पत्रिका के सम्पादन से होता है। उसके मासिक सम्पादन के अतिरिक्त हिन्दी और सस्कृत के अनेको विशेषाको का सम्पादन भी मैंने किया। उस

समय मेरी अवस्था लगभग १८ वर्ष की थी। इसके बाद मैं प्रथम दिशा-निर्देशक मुनिश्री नगराजजी के साथ अणुव्रत आन्दोलन में लगा। यह भी जीवन का एक सुनहला अध्याय बना। इसी बीच मुनिश्री नगराजजी द्वारा लिखित पुस्तकों का सम्पादन कार्य मैंने उठा लिया और मुनिश्री बुद्धमल्लजी द्वारा लिखित साहित्य का समायोजन भी मेरा अपना ही कार्य था। इसी धारा का अपूर्व उन्मेष मैं इसे मानता हूँ कि आचार्यवर की रचनाओं के सम्पादन का भी यह योग बना। आचार्यवर के कलकत्ता चतुर्मास (वि. सं. २०१६) में इस काम को योजनाबद्ध करने के सम्बन्ध में मैंने श्री शुभकरणजी दसाणी से विचार विनिमय किया। वे भी इस कार्य में सहमत और सहयोगी बने। इस सम्बन्ध से लगभग २१ पुस्तकों के सम्पादन व लेखन की परिकल्पना की। अग्नि-परीक्षा का सम्पादन कर मैं अपनी मंजिल का एक तिहाई तय कर चुका हूँ। यथासमय मैं अपनी पूरी मंजिल तय कर लूँगा यह आशा है। दीक्षा जीवन से लेकर अब तक सारी प्रवृत्तियों का सम्बन्ध मुनिश्री नगराजजी से तो रहा ही है। मैं अपने दायित्व को उनमें विसर्जित कर सदा निश्चिन्त बना रहता हूँ। उनका सतत सान्निध्य ही वर्तमान सफलता की भूमिका है।

वि. सं. २०१८ भाद्रव कृष्णा १२ — मुनि महेन्द्रकुमार 'प्रथम'

वृद्धिचन्द जैन स्मृति भवन
नया बाजार, दिल्ली

अनुक्रम

मंगल वचन

जय मगलमय परम प्रभु,
अर्हन् आत्माराम ।
स्वीकृत हो श्रद्धा-प्रणत,
सविनय कोटि प्रणाम ।

: १ :

शुभागमन

* जय जय रघुपति, जय जय लक्ष्मरण
जय जय सीता का शील महा।
यो जनता के जय-घोषो से
भू-मण्डल सारा गूज रहा।
सौधर्म सभा-सी लिए विभा
लका मे जुडी विराट सभा।
प्रासाद दिव्य दशकधर का
दिखलाता अपनी नव्य प्रभा।

सिहासन पर रघुवर लक्ष्मरण
रवि चन्द्र तुल्य थे चमक रहे।
प्रतिपल प्रमोद की धारा मे
थे जाते सबके हृदय बहे।
सुग्रीव, बिभीषरण, भामण्डल,
नल, नीलाङ्गद, हनुमान सभी।
सुरपति के सम्मुख सामानिक
ज्यो बैठे सह सम्मान सभी।

† विस्मित करते ससद को नभ-पथ से नारद आए,
हो स्वागत की मुद्रा मे उठ सबने शीश झुकाए।

पूछा सविनय रघुवर ने 'भक्तो को कैसे भूले?
क्या पता आप इतने दिन किस दिव्य लोक मे झूले?
ऋषिवर! जो घटित हुई है ये बडी-बडी घटनाए,
सिय-हरण, मरण रावण का, बोलो क्या-क्या बतलाए?'

---

* सहनाणी
† लय—तू बता-बता रे कागा

* जय जय रघुपति, जय जय लक्ष्मण
जय जय सीता का शील महा।
यों जनता के जय-घोषों से
भू-मण्डल सारा गूंज रहा।
सौधर्म सभा-सी लिए विभा
लंका में जुडी विराट सभा।
प्रासाद दिव्य दशकंधर का
दिखलाता अपनी नव्य प्रभा।

सिंहासन पर रघुवर लक्ष्मण
रवि चन्द्र तुल्य थे चमक रहे।
प्रतिपल प्रमोद की धारा में
थे जाते सबके हृदय बहे।
सुग्रीव, विभीषण, भामण्डल,
नल, नीलाङ्गद, हनुमान सभी।
सुरपति के सम्मुख सामानिक
ज्यों बैठे सह सम्मान सभी।

† विस्मित करते संसद को नभ-पथ से नारद आए,
हो स्वागत की मुद्रा में उठ सबने शीश झुकाए।
पूछा सविनय रघुवर ने 'भक्तों को कैसे भूले?
क्या पता आप इतने दिन किस दिव्य लोक में झूले?
ऋषिवर! जो घटित हुई हैं ये बडी-बडी घटनाएं,
सिय-हरण, मरण रावण का, बोलो क्या-क्या बतलाएं?'

---

* सहनाणी
† लय—तू बता-बता रे कागा

मेरे से अहो ! कृपा क्या ? देवर्षि मधुर मुस्काए
विस्मित करने संसद को नभ-पथ[1] से नारद आए।

यदि आप उपस्थित होते आनन्द और ही आता
रण देख आपका मन भी अत्यन्त मुदित हो जाता।
'बस-बस रहने दो अपनी यह गौरवभरी कहानी
मेरी भी कुछ तो सुनलो अब सुधा-स्राविनी वाणी।
तुम तो आनन्द मनाते रोती हैं वे माताएं'
विस्मित करने संसद को नभ-पथ से नारद आए।

* माता के मन की ममता को मैं तुम्हें बताने आया हूं
माता के मन की समता को मैं तुम्हें बताने आया हूं
माता के मन की समता को मैं तुम्हें बताने आया हूं।

वात्सल्य भरा मां के मन में
माधुर्य भरा मां के तन में
उस स्नेह-सुधा की सरिता का रस तुम्हें पिलाने आया हूं।

उदरस्थ पुत्र होता जब से
मां संरक्षण करती तब से
उसके कष्टों की मूककथा मैं तुम्हें सुनाने आया हूं।

स्नेहाकुल भार उठाती है
फिर कितनी पीड़ा पाती है
उस मातृ-हृदय के शुभ दर्शन मैं तुम्हें कराने आया हूं।

सब संकट स्वयं झेल लेती
सुत को न आंच आने देती
उस सफल रक्षिका की सुमधुर स्मृतियां सरसाने आया हूं।

---

[1] नभ—महावीर प्रभु के चरणों में

सुनती जब सुत का किंचित दु.ख ,
पीला पड जाता उसका मुख ,
उसकी उद्वेलित आत्मा को मै तुम्हे दिखाने आया हू ।

माता ही भाग्य-विधाता है ,
माता ही जीवन-दाता है ,
लो ! कान खोल कर सुनो, करुण सन्देशा मा का लाया हू ।

गीतक छन्द

आ रहा हू मै अभी साकेत से सीधा यहा ,
विलखती है, विलपती है उभय वृद्धाए वहा ।
राम-लक्ष्मण, राम-लक्ष्मण, एक ही बस ध्यान है ,
और सीता के लिए उलझे नसो मे प्राण है ।

सूख कर काटा हुआ तन, रह गया ककाल है ,
नीद, भोजन सभी छूटे हुआ हाल-विहाल है ।
सतत सेवारत भरत, फिर भी न उनको चैन है ,
सिक्त होकर आसुओ से हुए निष्प्रभ नैन है ।

वह त्रियामा राम ! उनको लक्ष-यामा हो रही ,
विरह-व्याकुल बनी कौशल्या-सुमित्रा रो रही ।
दु ख-सागर मे निमज्जित वे कही ढह जाएगी ,
तो सभी उनके हृदय की, हृदय मे रह जाएगी ।

अधिक दिन की वे नही, विश्वास क्या इस श्वास का ,
कहो झझा मे पता क्या ? क्षीण दीप-प्रकाश का ।
अत मिलना हो तुम्हे तो शीघ्र ही जाओ वहा ,
मिटा आर्त्तध्यान उनको शान्ति पहुचाओ वहा ।

* कहते आगम पुत्रो पर है अकथ, अतुल मा का उपकार ,
पुत्र करे कितनी परिचर्या नही उतरता फिर भी भार ।

---

* रामयण

अवसर है यह अब यत्किंचित् उऋणता को पाने का,
कहते वेद— मातृ-देवो भव उसको सफल बनाने का।

देकर उन्हें समाधि मानसिक अब शुभयोग मनाना है
सफल साधना में सहयोगी पूर्णतया बन जाना है।
कहने के अधिकारी हम फिर उचित जचे सो करना काम
नहीं प्रयोजन है दुनिया से भाई! हम तो रमते राम।

दोहा

बोले कौसल्या-तनय धन्य हुए हम आज,
दे दर्शन अब चेतना जागृत की महाराज।

† नहीं कभी भी हम भूलेंगे माता के उपकार को
जागृत किया जिन्होंने सात्विक नैसर्गिक संस्कार को।

जीवन के कण-कण में जिनका रमा हुआ आभार है
प्रतिपल स्मृति पटलों पर अंकित रहता प्यार-दुलार है
बढ़े बढ़ रहे और बढ़ेंगे ले उनके आधार को।

इधर उलझनों में उलझे हम रहे कार्य में व्यस्त से
भगवन्! कहीं-कहीं त्रुटियां भी हो जाती छद्मस्थ से
करना पड़ा व्यवस्थित इस लंका के शासन भार को।

अवसर पर दी हमें प्रेरणा मां से मिलना चाहिए
आते हैं हम शीघ्र आप जा उनको धैर्य बंधाइए
सुस्थिर रखना नियमिक बन आशा की पतवार को।

गीतक छन्द

आ गए नारद अयोध्या उछलते आनन्द में
मातृ-मन के मोद को बान्धा न जाता छन्द में।

---

† लय—जागृत कीजो मानवता के

राम का शीघ्रागमन सुन सभी हर्ष विभोर है,
भरत-मन प्रमुदित अमित उल्लास चारो ओर है।
सुखद स्वागत की नगर मे हो रही तैयारिया,
पुरुष कार्य-व्यस्त सारे, थी न पीछे नारिया।
स्वच्छ वातावरण पुर का, मधुर सौरभ से सना,
सभी द्वारो पर सुवर्णाक्षराकित शुभ भावना।
स्वागत स्थल मे हुआ साकेत आ समवेत है,
लोक-मानस हो रहा अद्वैत भक्ति उपेत है।
भरत भ्राता शत्रुघ्न सह आ गया उद्यान मे,
थी सभी की दृष्टि केन्द्रित एक पुष्पक यान मे।

* उत्सव का दिन है आज राम घर आए।
अब उतर रहा है यान नील अम्बर से,
जय-घोष तुमुल सब करते एक स्वर से।
पुष्पक विमान की प्रभा सूर्य मण्डल-सी,
लहराती ऊर्ध्व पताकाए चचल-सी।
आलोक विलोक दूर से जन हर्षाए,
उत्सव का दिन है आज राम घर आए।
नभ से देखा है राघव ने जनता को,
आकी उनके अन्त स्थल की ममता को।
साकार हुई वर्षो की स्मृतिया सारी,
जागी भावुकता सहज हृदय मे भारी।
हर्षाश्रु-बिन्दु लोचन युग मे लहराए,
उत्सव का दिन है आज राम घर आए।
† आया अवनी पर अभ्र-यान
राघव-लक्ष्मण नीचे उतरे,

---

* लावणी
† सहनाणी

आ मातृभूमि के अंचल में
बेहरे निखरे उल्लास भरे
बालकवत् दौड़ भरत भाई
गिर गए राम के चरणों में
खोए-खोए से हृदय हुए
पिछले सुमधुर संस्मरणों में।

अविराम राम पादाम्बुज को
नयनाम्बुज से वे सींच रहे
बाहों में भरकर अग्रज को
अग्रज ऊपर को खींच रहे,
सिर पर रखा है वरद हस्त
अत्यन्त स्नेह से गले लगा
भरतेश विरह सब भूल गए
अन्तर में नव आह्लाद जगा।

* एक दूसरे के प्रति दोनों अनिमिष दृष्टि निहार रहे
बहा-बहा पानी पलकों से मन का भार उतार रहे।
मुखरित मोद भावना मुखरित किन्तु हो रही वाणी मौन
आनन्दाब्धि निमज्जित मानस दोनों में कम बेसी कौन?

दोहा

आ कर के शत्रुघ्न ने सविनय किया प्रणाम
वत्सलता से दे रहे शुभाशीष श्रीराम।

* गंगा-यमुना की धारा ज्यों मिले भरत लक्ष्मण के साथ
कुशल प्रश्न अब भूप भरत से पूछ रहे प्रमुदित रघुनाथ।
क्यों भाई! तुम सकुशल तो हो? दीख रहे हो क्यों कृशकाय
प्रमुदित मन माताएं होंगी? सकुशल होगा धन-समुदाय।

रामायण

गीतक छन्द

प्रश्न सुनते ही भरत का गला सहसा भर गया,
हो गई पलकें छलाछल ज्वार-सा आया नया।
धैर्य कर एकत्र सविनय ज्येष्ठ से कहने लगे,
भाव मन के स्रोत बन वदनाद्रि से बहने लगे।

* मझदार नाव को छोड़ चले,
क्या पूछ रहे है आज कुशल?
बच्चो से नाता तोड़ चले,
क्या पूछ रहे हैं आज कुशल?

नन्हे-नन्हे इन कन्धो पर,
साम्राज्य-भार इतना रख कर,
मेरे से मुखड़ा मोड़ चले,
क्या पूछ रहे है आप कुशल?

ली पूज्य पिताजी ने दीक्षा,
पूरी न पा सका मै शिक्षा,
(मुझे) इस भवर जाल से जोड़ चले,
क्या पूछ रहे है आप कुशल?

मैं रोया कितना विलख-विलख,
कितना था मेरे मन मे दुःख,
कर उसे उपेक्षित दौड़ चले,
क्या पूछ रहे है आप कुशल?

† हरण हुआ भाभी का फिर भी मुझे स्मरण तक नही किया,
और कुशल सन्देश हमे लक्ष्मणजी का भी नही दिया।

---

* लय—एक दिल के टुकड़े

† रामायण

रण में सबको बुला लिया पर मेरी याद नहीं आई
उसी पिता का पुत्र कहो क्या था न आपका ही भाई ?

कभी किसी के साथ न करना जैसी की है मेरे साथ
टुकड़े-टुकड़े हृदय हो रहा किसे उलाहना दूं मैं नाथ !
की न कल्पना जैसी वैसा मेरे साथ हुआ व्यवहार
तब न सुनी अब तो सुन लेना पीड़ित मन की करुण पुकार !

दोहा

मैंने इतने दिन किया आर्य ! आपका काम
अब सम्भालो आप ही तब बोले श्रीराम ।

क्यों तू करता है भ्रात भरत
ऐसी बच्चों की सी बातें
कैसे मिलती यह विपुला औ
हम नहीं अयोध्या से जाते
इस सारी जनता ने तुमको
नैसर्गिक शासक माना है
हमने भी तेरा पूर्णतया
अब सही रूप पहिचाना है ।

नर प्रभावनों का संरक्षण
तू ने भारी गौरव पाया
मैं एक सिया को पूर्णतया
वन में न सुरक्षित रख पाया
मां कैकेयी की सूझबूझ का
ही यह तो सुन्दर फल है

सहजाणी

श्री भरतराज के रक्षण मे
साम्राज्य अवध का अविचल है ।

यदि तुझे बुला लेते तो कह
सम्भाल कौन पीछे करता ?
बूढी माताओ की सेवा कर
ताप कौन उनका हरता ?
तेरे रहते हम पूर्णतया
निश्चिन्त वहा पर थे भाई !
क्या होगा अहो ! अयोध्या मे ?
यह मन मे कभी नही आई ।

उलझे थे इतने उलझन मे
हम अरे ! तुझे क्या बतलाए ?
जिसके कारण ही हम कोई
सन्देशा भेज नही पाए ,
लका की करके विजय विकट
कितने धागे सुलझाए है ,
अब करने को विश्राम यहा
हम भरत-राज्य मे आए है ।

* उत्सव का दिन है आज राम घर आए ।

यो मधुर-मधुर सवाद पन्थ मे चलता ,
सब भूल रहे है आज विरह-व्याकुलता ।
जनता की भारी भीड उमडती जाती ,
मानो नगरी मे भी वह नही समाती ।
जन पक्तिबद्ध है पथ मे दाए बाए ,
उत्सव का दिन है आज राम घर आए ।

---

* लावणी

छज्जों छतों से सुमन वृष्टियां होतीं
न्योछावर भर-भर थाल हो रहे मोती।
वनिता की वनिताएं मन-मोद मनातीं
देती आशीषें सुमधुर मंगल गातीं।
आनन्द विभोर सभी बालक-बालाएं
उत्सव का दिन है आज राम घर आए।

नभ गूंज रहा वाद्यों की झंकारों से
भू बधिर हो रही जय-जय के नारों से।
देते दशरथ-सुत दान मुक्त हाथों से
करते सबका सम्मान मधुर बातों से।
आते विलोक मन-मुदित हुई माताएं
उत्सव का दिन है आज राम घर आए।

गीतक छन्द

राजमहल सजे हुए थे नव कलात्मक ढंग से
कर रही सेनाभिवादन अमित हय उमंग से।
उमड़ते जन आ रहे हैं उधर सिन्धु-तरंग से
रक्त थे सबके हृदय श्रीराम ही के रंग से।

माताओं को देख दूर से उतर गए हाथी से राम
सत्वर गति से किया मातृ-चरणों में सविनय सविधि प्रणाम।
हृदय भरा हर्षातिरेक से वचन सुधा मुख से झरती
माता के मन की ममता को माता ही जाना करती।

पैरों में गिरती सीता को बोली अपराजिता सगर्व
बेटी ! सदा सुखी रह तेरी सफल कामनाएं हों सर्व।
राम और लक्ष्मण से विजयी पुत्र जन्म करना उत्पन्न
भारत के गौरव की रक्षा भ हो पूर्णतया सम्पन्न।

* रामायण

लक्ष्मण ने ज्योही कौशल्या के चरणो मे रखा शीश,
पकड बाह गोदी मे बिठला, देती है मगल आशीष।
सर पर धर कर हाथ पूछती बेटा! कहा हुआ था घाव?
लालन क्या बतलाऊ कैसा उभरा था तब ममता-भाव।

बार-बार तन को सहलाती, कोमल हाथो से सस्पर्श,
अस्फुट शब्दो मे आता बाहर रह-रह अन्तर का हर्ष।
कभी देखती है चेहरे को, कभी वक्ष की ओर सगौर,
जहा हुआ था महाशक्ति का प्रलयकार प्रहार कठोर।

दोहा

बेटा! वन मे तो बहुत, झेले होगे कष्ट,
नही, नही मातेश्वरी! बोले लक्ष्मण स्पष्ट।

* अनुभव बतलाता हू, सस्मरण सुनाता हू,
अनुभव बतलाता हू, अपने वनवासी जीवन के
माताजी हो जाएगी आनन्दित उनको सुनके।
अनुभव बतलाता हू, सस्मरण सुनाता हू।

पूज्य पिताजी तुल्य प्रेम पाया था भाईजी का।
मिला आपसे भी बढकर वात्सल्य मुझे भाभी का।

वे वन के प्राकृतिक दृश्य लगते थे कितने प्यारे।
बन स्वतन्त्र आगे से आगे बढते चरण हमारे।

इच्छा होती जहा, वही हम वर्षावास बिताते।
ले आते फल-फूल, पका देती भाभी, हम खाते।

स्थान-स्थान पर लोक हजारो ग्रामो के आ जाते।
घण्टो उनसे होती रहती, मीठी-मीठी बातें।

---

* लय—म्हाने चाकर राखोजी

जहाँ किसी का दुःख सुन लेते (तो) राम वहीं पर जाते।
कर समुचित प्रतिकार शान्त मन वन ही में आ जाते।

जब मन आता तो मैं उसको पूरा स्वाद चखाता।
वह रघुवर की चरण-शरण में ही छुटकारा पाता।

झाँय झाँय करती झोंगी में सुखपूर्वक सो जाते।
प्रात उठते बसा हुआ हम नगर मनोहर पाते।

राम जहाँ है वहीं अयोध्या यह प्रत्यक्ष निहारा।
जंगल का भी मंगलमय हो जाता कण-कण सारा।

माताजी! हमने कितने ही उजड़े देश बसाये।
बिलख-बिलख करके मरते कितनों के प्राण बचाये।

आर्यों पर से म्लेच्छों का सारा आतंक हटाया।
पापों का बदला पापी को हाथों हाथ चुकाया।

किया धार्मिकों का संरक्षण देकर सहज सहारा।
पराधीनता से कितनों को दिलवाया छुटकारा।

सब कुछ ठीक हुआ पर मेरी एक भूल से सारी।
सुखमय स्थितियाँ बदलीं पाये भाईजी दुःख भारी।

हरण हुआ भाभी का आखिर करनी पड़ी लड़ाई।
घोर भयंकर दशकंधर की विजय समर में पाई।

हम डंके की चोट सती सीता को लौटा लाए।
आज आपकी दयामया से खुशी-खुशी घर आए।

सुन मधुर संस्मरण ये सारे
माता आनन्द विभोर हुई
नगरी की आभा खिली [illegible]
हर्ष-ध्वनि चारों ओर हुई

पहचानी

स्वागत के मगल गीतो से
मुखरित पुर की गलिया-गलिया,
घर-घर मे दिव्यालोक लिए
जगमगा रही दीपावलिया।

सब तरह प्रजा को देख सुखी-
सन्तुष्ट, राम सन्तुष्ट हुए,
सन्देश देश के नाम दिया
जन-हृदय भक्ति से पुष्ट हुए,
अब भरी सभा मे भरत भूप
रघुवर आज्ञा ले हुए खडे,
'सम्भालो अपना राज्य देव!'
ये शब्द सहज ही निकल पडे।

दोहा

तेरा ही यह राज्य है, तू ही कर सम्भाल।
क्यो तू मेरे डालता, व्यर्थ गले मे जाल।

* राज्य छोडना भरत चाहते, राम न लेने को तैयार,
आज राज्य लेने देने की आपस मे होती मनुहार।
कहता भरत 'न मुझे चाहिए, जाने आप आपका काम',
राम—मैंने तो कह दिया यहा, हम आए हैं करने विश्राम'।

† 'यह राज्य भरत है तेरा, तू ही निभा इसे।'
भरत—'मैं नही चाहता करना, सौपे मन हो जिसे।'

उस समय आपकी मीठी बातो मे आ गया।
मीठो के साथ नही अब घुन जाएगे पीसे।

---

* रामायण
† लय—प्रभु पार्श्वदेव चरणो में

राम—सौंपा अब पितृप्रवर ने तेरे को भार है।
बतला भाई ! अब तू ही सौंपूगा मैं किसे ?

भरत—भाईजी ! तीखे ताने मार्मिक क्यों कसते हैं ?
क्या छुपा आपसे दोषो, इस भव तक आदि से।

राम—सुन भाई ! छोड़ तुझे हम वनवास न जाएंगे।
अब यहीं रहेंगे, कर तू साम्राज्य समाधि से।

कहना न राम के रहते मैं राज्य नहीं लूंगा।
रहना चाहते हम तेरे शासन में शान्ति से।

भरत—यह राज्य आपका ही है सम्भालें आप ही।
अवकाश चाहता हूं मैं इस आधि-व्याधि से।

सिंहासन पर तो होंगे शोभित श्रीराम ही।
मैं जीवन-मुक्त बनूंगा संयम तप आदि से

इस शासन-संचालन का मेरे को त्याग है
भूषित होंगे अब राम राम-राजेश उपाधि से।

दोहा

सुन भाई की बात यह सारे रहे अवाक।
ऐसे कैसे राज्य को देते अहो तलाक।

एक इंच भू के लिए लड़-लड़ मरते भ्रात।
राज्य सौंपना हाथ से यह विस्मय की बात।

भरत त्वरित मुनि बन चले कर आमृत सुविवेक।
वासुदेव-बलदेव का हुआ राज्य अभिषेक

: २ :

षड्यन्त्र

* राज्यारोहण की मगल वेला मे प्रमुदित है साकेत,
उत्सव को उत्साहित करने भूप सहस्रो हैं समवेत।
स्वर्ग सभा-सी सभा प्रभा खिल रही दिव्य सिंहासन की,
हुई व्यवस्थित नई घोषणा वासुदेव-अनुशासन की।

गीतक छन्द

धरा-धन देकर सभी का मान राम बढा रहे,
दान ले अवधेश का उत्फुल्ल सारे जा रहे।
राम-लक्ष्मण का समूचे देश मे साम्राज्य है,
राम-राज्य अखण्ड छाया सरस-रस सुख प्राज्य है।

दोहा

राम और सौमित्री का जैसा अन्तर-स्नेह।
सूक्त सार्थ वह हो रहा, एक जीव दो देह।

* एक गुफा मे दो-दो मृगपति, एक म्यान मे दो तलवार,
शासन एक उभय सचालक, देख हो रहा चित्र अपार।
अवरज अग्रेज की आज्ञा के बिना न करते कोई काम,
परामर्श प्रत्येक बात मे लेते लक्ष्मण का श्रीराम।

† जय राम राज्य, जय राम राज्य धुकार समूचे भारत मे।
अविकल प्रभुत्व सीतापति का अधिकार समूचे भारत मे।

---

* रामायण

† लय—घनश्याम तुम्हारे द्वारे पर

अविरल आनन्द स्रोत बहता
था कहीं किसी को क्लेश नहीं
सुख शान्ति समृद्धि सिद्धि सम्पन्न
साकार समूचे भारत में।

अवसर पर इच्छित देते घन,
जहाँ सभी फसल लहराती थी
सन्तोष-स्नेह सच्चाई के
संस्कार समूचे भारत में।

जन हित के साधन सभी सुलभ
था राज्य प्रजा में एकापन
प्रामाणिकता से वृद्धिगत
व्यापार समूचे भारत में।

सात्विकता श्रद्धा सज्जनता
सौजन्य विनय वात्सल्य भरा
ऊँचा आचार विचार विमल
व्यवहार समूचे भारत में।

सब न्यायोचित शासन प्रबन्ध
सम्बन्ध परस्पर थे सुन्दर
जनता पर हल्के से हल्का
कर भार समूचे भारत में।

गीतक छन्द

नहीं करते कभी छोटे बड़ों की अवहेलना
मानते कर्तव्य है मानना उनका [illegible]।
बड़े छोटों की उपेक्षा नहीं करते थे कभी
कार्य होता वहीं जिसमें पूर्ण सम्मत हों सभी।

त्याग की पावन प्रतिष्ठा, सत्य-निष्ठा थी महा ;
त्यागियो के चरण मे नत-शीश जन-मानस रहा।
विनय और विवेक बढता, उच्च शिक्षा साथ मे,
उलझते थे वे न कोई व्यर्थ मिथ्या बात मे।

नारियो का स्थान पुरुषो से न किंचित् हीन था,
आत्म-निर्णय मे रहा, चिन्तन सदा स्वाधीन था।
पूर्ण था अधिकार, केवल भोग सामग्री नही,
किन्तु होने दिया उसका दुरुपयोग नही कही।

भिक्षुओ के सिवा भिक्षा मागना तो पाप था,
पराश्रित जीवन बिताना घोरतम अभिशाप था।
दान लेना और देना, रूप था सहयोग का,
स्पष्ट था प्रतिकार पुण्य-प्रलोभनो के रोग का।

दोहा

राम-राज्य मे हो रहे सब आनन्द विभोर।
अब थोडा-सा झाक ले, अन्त पुर की ओर।

* रमणिया राम की सब मिल सोच रही है,
सीता रहते किंचित सुख हमे नही है।
उससे ही रजित नाथ ! रात-दिन रहते
हमसे हसकर दो बात कभी ना कहते।

जलता रहता मन भीतर ही भीतर मे,
यह कैसा घोर अन्धेर राम के घर मे।
आलोक जहा से फैला भारत भर मे,
यह कैसा घोर अन्धेर राम के घर मे।

---

* लावणी

है गर्भाधान किया सीता ने जबसे
प्रभु और विरक्त हो गए हैं हम सबसे।
रह जाती हम तो बनकर दासी सारी
उनको तो एक वही प्राणों से प्यारी।
लगती है मन को ठेस द्वेष अन्तर में
यह कैसा घोर अन्धेर राम के घर में।

क्या पता कौनसे भव का लेती बदला
उज्ज्वल भविष्य कर दिया हमारा धुंधला।
स्वामी को वश कर स्वयं बनी पटरानी
फिर गया हमारी आशाओं पर पानी।
सक्लेश भर दिया सारे अन्तःपुर में
यह कैसा घोर अन्धेर राम के घर में।

अब ऐसा एक उपाय अचूक निकालें
हम ज्यों-त्यों इसे बहिष्कृत करवा डालें।
यदि एक बार भी विमुख राम हो जाएं
चुपचाप हमारा सभी काम हो जाए।
फिर देखो कैसे फूल खिलें अम्बर में
यह कैसा घोर अन्धेर राम के घर में।

दोहा

सबने सीता से अलग करके सभा स्वतन्त्र।
रचा बात ही बात में एक नया षड्यन्त्र।

कपट पिटारी नारियाँ उक्ति हो पड़ी सार्थ।
पर मुख में हो दुर्बला बोली हैं परमार्थ।

रहती भारी हृदय में सदा सौत से डाह।
ज्यों-त्यों उसके नाश की वह निकालती राह।

शूली से भी कष्टदा, होती स्त्री को सौत ।
'सौत न देना सावरा, दे दे चाहे मौत' ।

वहु-पत्नी की वस्तुत प्रथा कलह का हेतु ।
कितने इससे टूटते स्नेह-सिन्धु के सेतु ।

* ज्यो ज्यो वढा राम के आगे वैदेही का अति सम्मान,
त्यो भडकी विद्रोह-भावना, चला एक अभिनव अभियान ।
हुई सगठित सभी रानिया रचित योजना के अनुसार,
कार्य-सिद्ध करने अपना अव होकर पूर्णतया तैयार ।

† सीधी सीता के महलो मे
आई सव मिलकर एक साथ,
उत्फुल्ल हो गई जनकसुता
अपने घर सवको देख साथ,
स-स्वागत उन्हे बिठाती है
देकर सबको समुचित आसन,
अब कुशल प्रश्न के साथ-साथ
प्रारम्भ हो रहा सभाषण ।

* क्या कहना वाई! सीता का यह हम सबमे भाग्यवती,
पति-सेवा-रत रही निरन्तर दुर्लभ ऐसी महासती ।
घोर वनो मे गई, सही विपदाए धृति के साथ सदा,
होता है रोमान्च, श्रवण जव कर पाती हम यदा-कदा ।

बोली वैदेही बहिनो! क्यो करती हो थोथी स्तवना ?
परम हर्षिता हू मैं तो, यह प्रेम देख करके अपना ।
समय-समय पर आ-आकर तुम करती हो मेरी सम्भाल,
तत्क्षरण बोल उठी वह मुखिया जो उन सबमे थी वाचाल ।

---

* रामायरण
† सहनाणी

* भाई हम कुछ आज आपसे पाने के लिए।
जटिल उलझनें जीवन की सुलझाने के लिए।

चाहती हैं हम समय-समय पर सब मिलकर एकत्र हों,
नारी जागृति की चर्चाएं यत्र तत्र सर्वत्र हों
मार्ग-दर्शिका बनो मार्ग दिखलाने के लिए।
जटिल उलझनें जीवन की सुलझाने के लिए।

रही अकेली मासों तक उस राक्षस रावण के यहाँ
विविध यातनाएं सहकर भी अविचल आप रहीं वहाँ
कष्ट करें व अनुभव हमें सुनाने के लिए।
जटिल उलझन जीवन की सुलझाने के लिए

† इसी बीच में कहा एक न सबकी चिर-अभिलाषा है
भाई! दशकंधर कैसा था? यह अन्तर-जिज्ञासा है।
सुनने में आता है उसका सुन्दर, अभिनव रूप विचित्र
सहज समझ में आ जाएगा अगर बनाओ रेखा चित्र।

झांका न कभी मैंने उसको अंकित कर कैसे दिखलाऊं?
झांका न कभी मैंने उसकी छवि कैसे चित्रित कर पाऊं?

मैं नयन झुकाये रहती थी
मन मार गर्मी कष्ट सहती थी
अपने भावों में रमती थी
वे क्या-क्या अनुभव बतलाऊं?
झांका न कभी मैंने उसको
छवि कैसे चित्रित कर पाऊं!

---

* लय—मधुबन है माया संसार जगत
† रामायण
लय—नर देगी ध्यान स्पार्श का

क्या सकट का भी पार रहा,
इस मन पर दुस्सह भार रहा,
हा ! जीना ही दुश्वार रहा,
स्मृति मे आते ही घबराऊ।

दोहा

जिसने आ आकर किये नित्य नये उत्पात।
उसे कभी देखा नही, कम जचती यह बात।

* कहती हू बहिनो सही-सही,
सवत्सरार्ध मैं वहा रही,
पर देखा उसको कभी नही,
वह कैसा था, क्या समझाऊ ?

दोहा

नही देखा हो पूर्णत चित्र न खीचो खर।
पर आते-जाते हुए देखे होगे पैर।

चतुष्पदी

समझन न पाई जनक-दुलारी,
उनकी कपट-क्रियाए सारी।
आगे-पीछे कुछ न विचारा,
है भावी की निश्चित धारा।

---

* लय—नर देही व्यर्थ गमाई ना

हां हां बहिनों ! आते-जाते
चरण दृष्टि में तो पड़ जाते ।
किन्तु न उन्हें गौर से देखा
कैसे खींचूं उनकी रेखा ।

जो देखा है वही दिखाओ
हार्दिक इच्छा सफल बनाओ ।
तुम सब मत तानो जाने दो
कभी प्रसंग और आने दो ।

हम सबकी उत्कट है आशा
जीजी ! कर दो पूर्ण पिपासा ।
अति आग्रह को टाल न पाई
पत्र-तूलिका तुरत मंगाई ।

दोहा

चरण-चिन्ह चित्रित किये रावण के साकार ।
अवलोकन का स्वांग रच पत्र कर दिया पार ।

बस तत्क्षण बातों-बातों में
सामन्य सभा सम्पन्न हुई
सीता कुछ भेद न जान सकी
वे मन में परम प्रसन्न हुई
अस्फुट रेखांकित चरण-चिन्ह
का ठीक चित्र तैयार हुआ
फिर आगे के विस्तृत कार्यक्रम
पर भी पूर्ण विचार हुआ ।

सहनाणी

रक्खा वह चित्र पीठिका पर
पूजा सामग्री साथ-साथ,
ससद से आते रघुवर का
हो गया सहज ही दृष्टिपात,
रावण के से ये पैर यहा
विस्मित हो, बैठे पूछ आर्य !
'हम क्या जाने' यह तो प्रभु की
प्रिय पटरानी का नित्य कार्य।

दोहा

क्यो करती हो तुम सभी व्यर्थ, अनर्गल बात।
सहज उपेक्षा कर चले त्वरित अयोध्यानाथ।
चल न सका इस बार यह राघवेन्द्र पर वार।
अपमानित होना पडा, किन्तु न मानी हार।

गीतक छन्द

सभी अपनी दासियो को सौपती यह कार्य है,
पूजती रावण-चरण, सीता सदा अनिवार्य है।
दे प्रलोभन भेज घर-घर मे बढाई बात को,
कर दिया है रवि-उदय साक्षात आधी रात को।

* कैसा क्रूर कर्म है, यो मढ देना औरो पर अभियोग।
औरो पर अभियोग, है यह भीषणतम क्षय-रोग।
देख नही पाते जो औरो के शुभ का सयोग।
मत्सरता मे मरते, करते वे ऐसे उद्योग।

---

* लय—म्हारा सतगुरु करत विहार

जैसे को तैसे का ही फिर मिल जाता सहयोग ।
तब तो क्या कहना कामन को मिला जरस का योग ।

छलनामय कलना का पूरा होता है उपयोग ।
किन्तु अन्त में क्या होगा यह नहीं जानते लोग ।

इस अभ्याख्यान महापातक
का कोई भी प्रतिकार नहीं
इस महारोग का मरने के
अतिरिक्त और उपचार नहीं,
मद्यप लंपट लूटाक हिंस्र
अपने पापों को धो सकते,
व्रत भ्रष्ट सविधि प्रायश्चित्त कर,
तप-जप से पावन हो सकते ।

पर अभ्याख्यानी की कोई
निष्कृति का और उपाय नहीं
वापिस अभियोग बिना भुगते
बुझ सकती अन्तर-लाय नहीं,
कर मुनि को लांछित सीता यह
उसका यों प्रतिफल पाती है
(पर) इनका क्या होगा जो इतना
भारी षड्यन्त्र बनाती है ।

दोहा

यों फूलों की चाह न बोती हाय ! बबूल ।
किन्तु मिलेंगे अन्त में तीखे मुखीसे शूल ।

गहनानी

* गति विधि करने ज्ञात प्रजा की थे नियुक्त कुछ चर विश्वस्त,
समय-समय देते रहते, जो रघुपति को सवाद समस्त।
किया रानियो ने प्रोत्साहित उनको बिछा प्रलोभन पाश,
देख राम को एकाकी, सब आए उनके पास उदास।

चतुष्पदी

चेहरे पर चिन्ता की छाया,
शोकाकुल मुखडा मुरझाया।
थर-थर काप रहा तन सारा,
बरस रहे लोचन जल-धारा।

घबराए-घबराए आए,
राघव ने आसन्न बुलाए।
आश्वासित कर पास बिठाया,
मधुर स्वर से धैर्य बधाया।

अरे! आज यो क्यो करते हो,
बोलो आहे क्यो भरते हो?
है तुम सबकी यह स्थिति कैसी?
क्या दारुण घटना है ऐसी?

रुद्ध कठ क्यों बोल न पाते?
क्यो नयनो से नीर बहाते?
धैर्य धरो, क्या हुआ बताओ?
मत सकुचाओ, मत भय खाओ?

गीतक छन्द

क्या कहे हम आर्य! कुछ भी नही जाता है कहा,
वेदना से व्यथित हो शतखण्ड मानस हो रहा।

---

* रामायण

बाध्य हो कर्तव्य से माना पड़ा प्रभुवर यहाँ ,
आपके अतिरिक्त स्वामिन् ! त्राण हमको है कहाँ ?

चतुष्पदी

बोल नहीं आगे कह पाए
रसना रुकी हृदय भर आए ।
पुनरपि श्रीरघुवर समझाते
अन्तर का उद्वेग मिटाते ।

तुम सब ही मेरे विश्वासी
स्वामिभक्त ! आज्ञा अधिवासी ।
भाई ! बिना कहे क्या जानूं ?
सत्य स्थिति कैसे पहचानूं ?

उचित ध्यान मैं उस पर दूंगा
यथाशीघ्र प्रतिकार करूंगा ।
जो हो सही-सही बतलाओ ,
मेरे से कुछ भी न छुपाओ ।

देव ! नगर में जो चर्चाएं
फैली हैं क्या-क्या बतलाएं ।
कहना चाहते कह नहीं पाते
हम सबके अन्तर अकुलाते ।

क्या कहें सुनें कर्मों की अकथ कहानी ।
चलती कभी न इसके आगे मनमानी ।

जिसके लिए देव ने इतने भीषण कष्ट उठाए ।
सतत परिश्रम कर संगर के साधन सभी जुटाए ।

लय—पता छोड़ दे मेरा

सेतु बाध कर महासिन्धु पर प्रखर शौर्य दिखलाया।
कितने वीर-वीर सुभटो का रण मे रक्त बहाया।

महाशक्ति आघात भयकर लक्ष्मणजी ने झेला।
प्राण हथेली मे रख जूझा प्रण पर वीर अकेला।

और अन्त मे दशकधर को यम का ग्रास बनाया।
सीता को लौटाकर मन मे भारी हर्ष मनाया।

सर्वाधिक सम्मान बढाया अपने अन्त पुर मे।
तथाकथित उस महासती का अपयश है घर-घर मे।

दोहा

लका मे एकाकिनी रही सतत छ मास।
उसके अडिग सतीत्व पर कैसे हो विश्वास।

आकर्षित दशमुख हृदय रहा सदा उस ओर।
बना वासना-पूर्ति को, कोमल और कठोर।

* बिठा अकेली पुष्पक मे रावण ले जाया करता था,
निर्जन उपवन मे प्रमोद से जी बहलाया करता था।
विद्या, यन्त्र, मन्त्र से जिसने लिए देव-देवी भी कील,
क्या सम्भव है उसके आगे ? रहा अखण्डित उसका शील।

† ये ऐसी तर्कें हैं जिनका
सवितर्क न उत्तर दे पाते,
आत्मीय आपके जो ठहरे,
दिल को कचोटती ये बातें,

* रामायण
† सहनाणी

बौद्धिक सामाजिक राजनयिक
सब क्षेत्रों में हैं चर्चाएं
गलियों-गलियों में घर-घर में
स्वामिन् ! किस-किस को समझाएं।

दोहा

और रमणियां हैं बहुत सुन्दर रम्याकार।
क्यों न छोड़ देते उसे रखने लोकाचार

प्रत्यक्ष बड़ों के सम्मुख था
कोई भी नहीं कहा करता,
डर के मारे छुप-छुप कर हा
विप्लव का स्रोत बहा करता।
'म्याऊं' के मुंह पर कौन चढ़े
यह सबसे बड़ी पहेली है
आगे स्तवना पीछे निन्दा
साधारण जन की शैली है।

क्या किसे कहें ? क्या उत्तर दें ?
सुन-सुन कर ही रह जाते हैं
जनमत के आगे और नहीं
बल-भुन कर ही रह जाते हैं
बस सुनें यहां अपवाद यही
विक्षोभित वातावरण हुआ,
जिसका अपयश करती जनता
उसका जीते भी मरण हुआ।

सहगामिणी

यह नीति वाक्य सुन राघवेन्द्र
जनता को भ्रान्ति मिटाएगे,
आगे-पीछे चिन्तन पूर्वक
अत्युत्तम कदम उठाएगे,
उत्तेजित, उद्वेलित अन्तर
क्षण भर मे चेहरा बदल गया,
चर खिसक गए हैं एक-एक
जब देखा खिलता रग नया।

गीतक छन्द

सुन अकल्पित कल्पना यह, राम दु खित हो गए,
खिन्न मन विश्राम गृह मे क्लान्त होकर सो गए।
ज्वार विविध विचार के हृदयाब्धि मे आने लगे,
लहर बनकर ओष्ठ तट से शब्द टकराने लगे।

दोहा

ऐसे कैसे लोग ये करते हैं बकवास।
सहसा हो सकता नही कानो को विश्वास।

*सुन के छिछले लोगो की ऐसी बात,
सीता को ऐसे कैसे छोड दू।
होता चिन्तन से मन पर वज्राघात,
उस कल्प-लता को कैसे तोड दू।

बोल रहा है स्वय शील, जिसके जागृत जीवन मे।
शौर्य झलकता है सतीत्व का, दीप्त युगल लोचन मे।

---

*लय—मन्दिर मे कार्ण दढती फिरै

रावण क्या सुरपति भी आए तदपि न विचलित होती।
मेरा हृदय दे रहा साक्षी अटल पतिव्रत ज्योति।

तो फिर यों अपवाद भयंकर क्यों जनता में छाया।
कुछ न समझ में आता किसने भारी भ्रम फैलाया।

कहते हैं जो पर, उसमें भी झलक रही सच्चाई।
बिना सत्य हार्दिक दुख इतना देता नहीं दिखाई।

उनके कहने से क्या हो जो कहते सुनी-सुनाई।
शत प्रतिशत है सती जानकी संशय है ना पाई।

पर घर नाशक लोक-शोक ये सही बात क्या जानें।
बिना विचार किये औरों पर कसते तीखे ताने।

नहीं कभी भी सीता मन से पर की वांछा करती।
उलट जाय चाहे अम्बर भी पलटे चाहे धरती।

होने को क्या होनी सम्भव हर मानव की गलती।
क्या न पथ-च्युत हो जाती है गाड़ी चलती चलती।

ऐसी भूल कर वैदेही बात न जचती मन में।
मैं तो परख चुका हूं जिसको अपने सह जीवन में।

प्रलोभन में आकर पर, वे इधर-उधर हो सकते।
या मर जाय जान पर भी मानवता तो रखते।

*आवश्यक अब मैं ही जाऊं
सत्य स्थिति का पता लगाऊं।
कारण मति विश्वास पराया
जिसमें मैं ही धोखा खाया।

* लय—मां ही रे नयाना

है सीता प्राणो से प्यारी,
सती गुणवती वह सन्नारी।
फिर क्यो ये झूठी चर्चाए,
जन-मानस मे आशकाए।

मैं इसका नित्कर्ष निकालू,
कानो मे यो तैल न डालू।
करू आज ही निर्णय सारा,
रोकू इस विप्लव की धारा।

है प्रवाह गडरी जनता का,
अस्थिर ज्यो शिखरस्थ पताका।
क्षण मे इधर-उधर हो जाती,
नही सही चिन्तन कर पाती।

दोहा

तमा अमा की यामिनी पहने कपडे श्याम।
एकाकी तलवार ले निकल पडे श्रीराम।

*घूमते गली-गली, आज अकेले राम।
एक ही हवा चली, नही राम मे राम।

जहा जाते सुनते वही, वे राम नाम बदनाम।
घूमते गली-गली, आज अकेले राम।

मानो जनता के रहा हो और न कोई काम।
खुली निन्दा कर रहे सब ले सीता का नाम।

हाय ! कलकित हो रहा है सूर्यवश अभिराम।
दुराचारिणी के बने हैं रघुकुल-तिलक गुलाम।

---

* लय—हरि गुण गायले

उसमें ही आसक्त वे रहते हैं आठों याम।
जिसने लंका में किया छः-छः मासिक आराम।

नहीं समझते हैं अभी आगे का दुष्परिणाम।
समझें भी कैसे कहो जब होता है विधि वाम।

दोहा

ज्योंही कुछ आगे बढ़े खिन्न मना रघुनाथ।
सहसा कानों में पड़ी गृह-माता की बात।

† हो निवृत्त सारे कार्यों से बैठा है सन्मुख परिवार
सबको सद् शिक्षा देती है बुढ़िया करती प्यार-दुलार।
देखो सावधान रहना, रखना कुल-मर्यादा पर ध्यान
इधर-उधर हो मत बन जाना कोई सीता राम समान।

रही नहीं कोई मर्यादा रहा नहीं कोई आधार
पत्नी के पीछे पागल बन राघव ने लोपी कुल-कार।
सर्वेसर्वा बने हुए, कोई न टोकने वाला है
मन चाहे ज्यों करो उन्हें कोई न रोकने वाला है।

महासती का जामा पहने कभी न पतिता छिप सकती
कितना धोओ काक-कालिमा नहीं कभी भी धुल सकती।
सती-साध्वियां और रानियां बैठी-बैठी रोती हैं
उल्टा युग आया देखो कुलटा पटरानी होती है।

जिसके इंगित पर ही रघुवर एक-एक डग भरते हैं
अपने प्राणों से भी बढ़कर प्यार हृदय से करते हैं।
पर वे देवीजी रावण के चरणों की पूजा करती
इन पापाचारों से कैसे टिक पायेगी यह धरती।

---

† रामायण

दोहा

दे कानो मे अगुली, ले लम्बा निश्वास।
चले राम सहसा रुके, वृद्धजनो के पास।

* देखो भाई! दीख रहे है कलियुग के आसार रे।
राजघराने मे भी पलते ऐसे पापचार रे।

नई हवा की लहर राम पर सबसे ज्यादा आई,
घुमा वनो मे साथ-साथ उसको आजाद बनाई,
बेचारी बूढी माताए तो करती रही पुकार रे।
देखो भाई! दीख रहे हैं कलियुग के आसार रे।

यो उच्छृखल रहने वाली, मर्यादा क्या जाने?
कुल की आन और घर की उज्ज्वलता क्या पहचाने?
रावण के साथ रहा निश्चित उसका अनुचित व्यवहार रे।
देखो! भाई दीख रहे है कलियुग के आसार रे।

मनमानी मौजें की, सोचो! कौन देखने वाला,
दशरथ नृप होते तो कभी न लगने देते काला,
घर मे भी पैर न रखने पाती, बिना करे प्रतिकार रे।
देखो भाई! दीख रहे हैं कलियुग के आसार रे।

राम-राज्य मे बूढो की तो होती नही सुनाई,
भले, अनुभवी, विज्ञ, विवेकी सबको मिली विदाई,
हा मे हा भरने वालो की, ही बनी आज सरकार रे।
देखो भाई! दीख रहे हैं कलियुग के आसार रे।

---

* लय—कोटि-कोटि कठो से गाए

दोहा

छुपके से चलते बने करते ऊहापोह।
आगे माया सामने युवकों का विद्रोह।

* अब अधिक न चलने पायेगा
मनमाना अत्याचार यहाँ
अब अधिक न चलने पाएगा
सीता का पापाचार यहाँ
यह बड़े खेद की बात अभी तक
सूझे राम के काम नहीं
वह राजा क्या जिसके घर का
हो जनता में सम्मान नहीं।

वह शासक क्या जिसके घर
में भी हो ऊंचा आचार नहीं
वह न्यायी क्या जिसके घर
अन्यायों का प्रतिकार नहीं
साकेत भूमि यह है जिसमें
अधिकार प्रजा को भी सारे
जो न्याय-नीति के साथ चले
वे ही नृप प्राणों से प्यारे।

पथ से होते जो इधर-उधर
बस समझो उनकी खैर नहीं
घटना सौदास नरेश्वर की
हमको करती आह्वान यही
अपनी इस मातृभूमि पर हम
अन्याय नहीं होने देंगे

---

* पटनाली

भारत के गौरव को खोकर
सोए न, कभी सोने देंगे।

गीतक छन्द

जहा मिलते एक से दो, बात करते है यही,
आजकल की नई चर्चा, सुनी तुमने या नही?
कौनसी? क्या उसी सीता के लिए तुम कह रहे,
चित्र! कैसे राम जन-अपवाद इतना सह रहे?

आज घर-घर मे बना यह विषय वार्तालाप का,
पूर्ण भर कर घडा आखिर फूटता है पाप का।
बडे घर की बात भाई! कहे तो किसको कहे,
यही अच्छा है अपन तो, मौन होकर ही रहे।

अयश सुन-सुन राम के तो कान बहरे हो गए,
दु ख से घायल हृदय के घाव गहरे हो गए।
चल् पुर बाहरा जरा, गतिविधि वहा की झाक लू,
अल्प शिक्षित निस्व जन की, भावना भी आक ल।

दोहा

पहुचे आधी रात को राम वहा सविषाद।
धोबी-धोबन मे जहा, चलता वाद-विवाद।

* धोबी झटपट खोल।
खोल-खोल दरवाजा,
बाहर खडी अकेली रे।
नही है साथ सहेली रे,
धोबी झटपट खोल।

---

* लय—पनजी मुडै बोल

प्रतिदिन ऐसे नाटक करना यह क्या तेरी शैली रे,
तुझे पता क्या इससे बढ़ती बेल विषैली रे
उलझती और पहेली रे।

कितनी देर हुई, आवाजें मैंने कितनी दे ली रे,
अब तक जगा न लगता बोतल अधिक उंडेली रे
(या) बूटी ज्यादा ले ली रे।

देना व्यर्थ दुःख अबला को यह क्या आदत मैली रे
या घर में बिठलाई कोई नई नवेली रे
रूप रमा अलबेली रे

* जा तू आई जहां जा तू आई जहां
तेरे लिए नहीं स्थान यहां।

अपनी कुल मर्यादा भूल
कुलटा दासी घर घर घूम
फिरती रहती जहां-तहां।
तेरे लिए नहीं स्थान यहां।

जान चुका सब तेरे चरित्र
होने न दूंगा घर अपवित्र
(कह) इतनी देर लगाई कहां?
तेरे लिए नहीं स्थान यहां।

† तू क्या जाने नगर सेठ की कितनी दूर हवेली रे,
घण्टों बैठी रही वहां तब मिली अकेली रे
और यह गुरु की भेजी रे।

---

* लय—ऐसो यादुपति
† लय—अगजी मुंई बोले

झूठी धौंस जमाता मानो सौंपी हो कोई थैली रे,
तेरे साथ सदा से ही विपदाए झेली रे,
फट गए पाव-हथेली रे।

* पतिता रहने दे बकवास,
जा उस नव प्रियतम के पास,
होगा तेरा सम्मान वहा,
तेरे लिए नही स्थान यहा।

† तेरी मा, दादी, नानी की महिमा घर-घर मे फैली रे,
किस मुह से दे रहा चुनौती कटुक कसैली रे,
(हू) मैं भी चतुर चमेली रे।

दोहा

बक-झक कर क्यो कर रही मेरी नीद खराब।
निकल यहा से पापिनी सौ का एक जबाब।

‡ बोल जरा सम्भाल वदन से, छाती पर रख हाथ विचार,
इस घर मे तेरे समान ही है मेरा पूरा अधिकार।
देखा तेरा उच्च घराना, देख लिया तेरा कुल-वंश ?
अरे ! राम से भी ऊचा क्या है, कोई मानव अवतंश ?

नही सुना क्या उनके घर मे सीता का कितना सम्मान ?
पूज रही है जो रावरण के चरण मान करके भगवान।
तू बेचारी किस गिनती मे बोल रहा बढ-बढ क्या बोल ?
बस रहने दे डीग हाकना, उठ, झटपट दरवाजा खोल।

---

* लय—ऐसो जादुपति

† लय—पनजी मुडे बोल

‡ रामायण

दोहा

री ! पापिन ! क्यों कर रही मुझे राम के तुल्य ।
जिसने पत्नी के लिए खोया अपना मूल्य

है खबरदार जो यहां दूसरी
बार राम का नाम लिया
जिसने राजा होते ही इस
सिंहासन को बदनाम किया
भयभीत बड़ा वह कायर है
पत्नी का मोह न छोड़ सका
उस दुराचारिणी से अपना
किंचित् सम्बन्ध न तोड़ सका ।

होती मेरे घर ऐसी तो
तत्क्षण ही मैं ठुकरा देता
घर से निकाल बाहर करता
लातों से जीवन ले लेता
यदि मुझे राम की उपमा दी
तो मारे बिना न छोडूंगा
भागी से बदन मुलस दूंगा
सिर भिड़ा भीत से फोडूंगा ।

दोहा

अब न यहां पर टिक सके एक पलक भी राम ।
सीधे जा विश्राम-गृह में पाया विश्राम ।

नारी

: ३ :

परित्याग

दोहा

री ! पापिन ! क्यों कर रही मुझे राम के तुल्य ।
जिसने पत्नी के लिए खोया अपना मूल्य

* है खबरदार जो यहाँ दूसरी
बार राम का नाम लिया
जिसने राजा होते ही इस
सिंहासन को बदनाम किया
भयभीत बड़ा वह कायर है
पत्नी का मोह न छोड़ सका
उस दुराचारिणी से अपना
किंचित् सम्बन्ध न तोड़ सका ।

होती मेरे घर ऐसी तो
तत्क्षण ही मैं ठुकरा देता
घर से निकाल बाहर करता
लातों से जीवन ले लेता
यदि मुझे राम की उपमा दी
तो मारे बिना न छोड़ूंगा
आगी से बदन झुलस दूंगा
शिर भिड़ा भींत से फोड़ूंगा ।

दोहा

अब न यहाँ पर टिक सके एक पलक भी राम ।
सीधे जा विश्राम-गृह में पाया विश्राम ।

---

* लाखी

गीतक छन्द

विश्व-वातावरण सारा तम निमज्जित हो रहा,
जन-समूह अनूह निशि के व्यूह मे था सो रहा।
टिमटिमाते तारको की क्रान्ति ज्योति-विहीन थी,
प्रकृति ध्वान्तावरण मे तल्लीन सर्वाङ्गीण थी।

अभ्र, अवनी, सर, सरोरुह, श्रान्त-शान्त नितान्त थे,
सरित्, सागर-शब्द रह-रह हो रहे उद्भ्रान्त थे।
विहग, पन्नग, द्वय-चतुष्पद, सर्वत निस्तब्ध थे,
हुई परिणत गति स्थिति मे, शब्द भी नि शब्द थे।

किन्तु राघव का हृदय आन्दोलनो से था भरा,
घूमता आकाश ऊपर, घूमती नीचे धरा।
तल्प-कोमल, निशित सायक तुल्य-दु खद लग रही,
स्वय उनको हा! स्वय की भावनाए ठग रही।

* कर्मों की कैसी माया,
मैं अब भी समझ न पाया।
हा! कितना कष्ट उठाया,
कर्मों की कैसी माया।

राजपाट को छोड प्रवासी,
वर्षों बना फिरा वनवासी।
हा! सूख गई यह काया,
कर्मों की कैसी माया।

---

* लय—करमन की रेखा

उग्र लोक-विचार ये दबने न पाएगे अभी,
बिना पलटे हृदय पडने का प्रभाव नही अभी।
अत सीता को गहन मे छोड देना चाहिए,
मोह के इन बन्धनो को तोड देना चाहिए।

लोक-हित के सामने, हित प्रेयसी का गौण-सा,
अब रहा अतिरिक्त इसके दूसरा पथ कौन-सा।
बैठते-सोते कभी वे बोलते उद्वेग से,
हो रहे है कवि हृदय की कल्पना के वेग से।

दोहा

निशि का दु खद दृश्य वह रहा हृदय को तोड।
अगडाई लेकर उठे रघुवर शय्या छोड।

उदित प्रकम्पित-सा अरुण, अरुण अभ्र को चीर।
देख अनिष्ट उदर्क यह, निष्प्रभ हुआ शरीर।

लगते है असुहावने विहगो के कल गीत।
पावन दृश्य प्रभात का आज हुआ अस्फीत।
क्रोध-क्लेश मे कापते आए बाहिर राम।
कर सत्वर सोद्विग्न मन सब आवश्यक काम।

* सामन्त्रण अर्हित सभ्यो की बुलवाई आन्तरिक सभा,
सन्न रह गए सभी सभासद देख राम की उग्र प्रभा।
रग उतर आया आखो मे, अग हो रहा अस्त-व्यस्त,
शब्द न कोई बोल सका, बैठे निम्नानन मौन समस्त।

दोहा

ओष्ठ काटते दसन से बोल उठे अवधेश।
अपने मन मे कर चुका निर्णय एक विशेष।

लम्बा विरह सहा नारी का,
ज्यों आघात महामारी का।
क्या विधि ने जाल बिछाया
कर्मों की कैसी माया।

पागल की सी कर-कर बातें
रो-रो काटी कितनी रातें।
यह अंकित है प्रति-छाया
कर्मों की कैसी माया।

करके कितनों की कुर्बानी
रण में खून बहा ज्यों पानी।
रावण को मार गिराया
कर्मों की कैसी माया।

सीता को घर लाया अपने
देख रहा था सुख के सपने।
हा! यह दुर्दिन क्यों आया
कर्मों की कैसी माया।

गीतक छन्द

सोचलूं अब कौनसा पथ मुझे लेना चाहिए
(क्या) जन-कलंकित जानकी को छोड़ देना चाहिए।
मोह मन में मैथिली का इधर जन-विद्रोह है
किस ओर ? क्या करूं ? कर रहे ऊहापोह हैं।

हो उपेक्षा प्रजा-जन की कार्य अव्यवहार्य है
अत उस पर ध्यान देना हो गया अनिवार्य है।
सूर्य-कुल का सदा गौरवमय रहा इतिहास है
अन्य उसमें नहीं यह मालिन्य का आभास है।

भाईजी ! मैं सच कहता हू, महासती है सीता।
जिसके ही सतीत्व पर हमने लका का रण जीता।

सूर्य, चन्द्र, अम्बुधि चाहे, अपनी मर्यादा छोडे।
तो भी कभी न जचता भाभी अटल पतिव्रत तोडे।

चाहे विना निर्जरा कोई कर्म-कटक को मोडे।
तो भी कभी न जचता भाभी अटल पतिव्रत तोडे।

अभवी मुक्त बने, अलोक मे चाहे पुद्गल दौडे।
तो भी कभी न जचता भाभी अटल पतिव्रत तोडे।

साडम्बर जल-मथन कर चाहे नवनीत निचोडे।
तो भी कभी न जचता भाभी अटल पतिव्रत तोडे।

मेरु भले डिगे, पर सीता डिग न सकेगी प्रण से।
पूछो उसकी गौरव-गाथा लका के कण-कण से।

टुकडे-टुकडे हृदय हो रहा, सुन बचपन की बातें।
सीता ! सीता कर रोते क्या ? भूल गए वे रातें।

होगा यह अन्याय, गई यदि महासती ठुकराई।
यो कहते-कहते लक्ष्मणजी की आखे भर आईं।'

दोहा

तमक उठा लकेश तब कौन कह रहा नाथ।
वैदेही के विषय मे करले मुझसे बात।

* 'लका का कण-कण बोल रहा
है महासती सीता माता।
लका का जन-जन बोल रहा
है महासती सीता माता।

---

* लय—महावीर प्रभु के चरणो मे

* सौमित्री, सुग्रीव विभीषण सुन लेना हनुमान।
सीता को मैं छोड़ रहा हूं रखने कुल-सम्मान।

प्रजाजनों में फैला है कितना मेरा अपवाद
दूषित वातावरण हो रहा भारी बढ़ा विषाद
शासक कहलाते तुम सब क्या दिया किसी ने ध्यान।
सीता को मैं छोड़ रहा हूं रखने कुल-सम्मान।

घर घर में चर्चा है सीता का लांछित आचार
सहन नहीं होते मुझसे ये तीखे शस्त्र प्रहार
करना होगा स्वयं स्वयं के स्वार्थों का बलिदान।
सीता को मैं छोड़ रहा हूं रखने कुल-सम्मान।

जान रहा हूं समझ रहा हूं सीता है निर्दोष
पर मैं विवश देखकर हूं यह जनता का आक्रोश
अतः उक्त निर्णय पर पहुंचा बन करके पाषाण।
सीता को मैं छोड़ रहा हूं रखने कुल-सम्मान।

दोहा

लक्ष्मण के दिल पर हुआ मानो विद्युत्पात।
भाईजी! क्यों कह रहे, यह असुहानी बात।

† 'भैया! राम! यों सीता को नहीं छोड़ें।
विश्व विश्राम! यों सीता को नहीं छोड़ें।

नारी रत्न अमूल्य धारणा तुल्य सयानी सीता।
गृह-लक्ष्मी माधुर्य मूर्ति-सी सद्गुण गौरव गीता।

सहज सुकोमल सरल गरल को अमृत करती सीता
विषम परिस्थितियों में जो कभी नहीं भय भीता।

---

* लय—मंगल गाय बनाएं पाएं

† लय—छम्नो मैं नहीं छाडू

दुर्दिन आते तभी देव ! ऐसी दुर्मति है आती ।
गर्भवती, गुणवती सती, क्या वन मे छोडी जाती ?

अत नाथ से नम्र-निवेदन, चिन्तन करें दुबारा ।
उलटी-सुलटी बहती यो ही, यह जन-मत की धारा ।'

दोहा

होठो मे करने लगे, राघव स्वर सन्धान ।
इतने मे ही बीच मे, बोल उठा हनुमान ।

* 'सबको तो प्रभु ने पूछ लिया
क्यो मुझे पूछना भूल गए,
जाकर लका मे प्रथम बार
ला मैंने ही सवाद दिये,
देखा मैंने इन आखो से
जब राम-राम वह करती थी,
अलके बिखरी थी गालो तक
टप टप टप आखे झरती थी ।

जब गिरी मुद्रिका गोदी मे
उस समय दृश्य कुछ और मिला,
सवाद दिया जब प्रभुवर का
मानो वह मुरझा सुमन खिला,
जब आई मन्दोदरी वहा
किस तरह उसे भी फटकारा,
इस नारी के आगे न कभी
टिक पाता रावण बेचारा ।

---

* सहनाणी

अथ से इति तक मैं वहाँ रहा
क्या-क्या उसने आतंक सहा
करता हूँ जब मैं स्मरण मरण का भय-सा मन में छा जाता।

कैसे फटकारा करती थी
कैसे ललकारा करती थी
कैसे धुत्कारा करती थी जब जब सम्मुख रावण आता।।

जगदम्बा वह जगदम्बा है
कुल की आधार स्तम्भा है
उसके प्रति ऐसा चिन्तन क्यों मैं तो कुछ समझ नहीं पाता।'

दोहा

बोले कपिपति आर्यवर ! होकर चतुर चकोर।
किसके कहने से बने इतने आप कठोर।

ये लोग लोक हैं इनकी बातों में आप न आइए।
यों बिना विचारे, ऐसा मत अनुचित कदम उठाइए।

लोगों का क्या ये तो गोबर के कीड़े के साथी।
नहीं मक्खियाँ रसना में वह इधर-उधर हो जाती।

लोक-कथन से डरने वाले जीवित रह ना पाते।
बड़े और पैदल दोनों की लोग मजाक उड़ाते।

भूल गए क्या वह दिन जिस दिन मुझको था समझाया।
न्यायप्रिय ! अब अपने को ही यों कैसे उलझाया।

पत्नी चाहे कैसी भी हो क्या जाती ठुकराई।
जिसमें ऐसी महासती जो इस घर की पुण्याई।

दुर्दिन आते तभी देव ! ऐसी दुर्मति है आती ।
गर्भवती, गुणवती सती, क्या वन मे छोडी जाती ?

अत नाथ से नम्र-निवेदन, चिन्तन करे दुबारा ।
उलटी-सुलटी वहती यो ही, यह जन-मत की धारा ।'

दोहा

होठो मे करने लगे, राघव स्वर सन्धान ।
इतने मे ही वीच मे, वोल उठा हनुमान ।

* 'सबको तो प्रभु ने पूछ लिया
क्यो मुझे पूछना भूल गए,
जाकर लका मे प्रथम वार
ला मैंने ही सवाद दिये,
देखा मैंने इन आखो से
जब राम-राम वह करती थी,
अलकें बिखरी थी गालो तक
टप टप टप आखे झरती थी ।

जब गिरी मुद्रिका गोदी मे
उस समय दृश्य कुछ और मिला,
सवाद दिया जब प्रभुवर का
मानो वह मुरझा सुमन खिला,
जब आई मन्दोदरी वहा
किस तरह उसे भी फटकारा,
इस नारी के आगे न कभी
टिक पाता रावण बेचारा ।

---

* सहनाणी

अपने संस्मरणों के द्वारा
मैं बतलाता हूं स्पष्ट विभो !
उसके तो लक्षण न्यारे ही
होती जो स्त्री पथ भ्रष्ट विभो !
सीता के लिए कहो तो भी
मैं क्या शपथ खा सकता हूं
इसके सतीत्व को सप्रमाण
जब चाहूं बतला सकता हूं।

जो बिना विचारे लोगों के
कहने से कदम उठाते हैं
वे मेरे पूज्य पितामह ज्यों
आखिर रोते पछताते हैं
महारानी विद्यमान पर भी
मेरी माता का बहिष्कार
कहता है उसके बस न करो
अबला का ऐसे तिरस्कार।

दोहा

किंकर्तव्य विमूढ़ से बोल उठे श्रीराम।
क्या तुम सब को पूछने का यह है परिणाम।
* मैं सीता को छोड़ूंगा चाहे जग भी हो जाए।
निश्चय न बदल पाएगा चाहे जो उलझन आए।

क्या कहते हो तुम सबसे ज्यादा मैं जान रहा हूं
निर्णय मूदण-क्रम की है यह भी मान रहा हूं
मैं क्या कोई बालक हूं मेरा भी कुछ चिन्तन है
कर लिया पूर्णतः मैंने अन्वेषण अनुशीलन है

---
* लय—तू बता-बता रे बापा

सुनकर यह अन्तिम निर्णय सबके मानस मुरझाए।
मैं सीता को छोड़ूंगा चाहे कुछ भी हो जाए।

दोहा

चुभे हृदय मे ये वचन, जैसे तीखे तीर।
आ करके कुछ जोश मे, बोले लक्ष्मण वीर।

* 'कुछ सोचो विचारो रे! हृदय पर हाथ धरो।
थोड़ी गरमी उतारो रे! मेरा विश्वास करो।

करता हू मैं अभी-अभी अपवाद प्रजा का बन्ध,
जो न करू तो आर्य! आपके चरणो की सौगन्ध,
द्वन्द्व मे मत उतरो।

जो कोई भी कही करेगा एतद् विषयक बात,
प्राण-दण्ड दूगा मैं उसको निश्चित निर्व्याघात,
बात यह मत विसरो।

गए शहर मे आप मुझे तब क्यो न ले गए साथ,
बक-बक करने वालो को दिखला देता दो हाथ,
भ्रात कर्तव्य स्मरो।

जनता के पीछे क्या हम हो जाएगे बरबाद,
शान्त चित्त हो, दूर हटाओ, अब अपना उन्माद,
विषाद विवाद हरो।

कहे-कहे करते रहने से क्या चलता है राज्य,
किस-किस का मुंह देखे, हमे चलाना है साम्राज्य,
प्राज्य सुख सुयश वरो'।

---

* लय—शर बाधे कफनवा रे

दोहा

यों न दबाना है उचित सार्वजनिक विद्रोह।
अच्छा है हम छोड़ दें सीता का ही मोह।
सेनाध्यक्ष कृतान्तमुख ! जा कर तू यह काम।
वन में उसको छोड़ आ यों बोले श्रीराम।

सोरठा

भर नयनों में नीर राघव का मुंह ताकते।
बोले लक्ष्मण वीर रे भैया ! क्या कर रहे ?

ओ भैया ! मेरे ! भाभी को मत ठुकराओ
भैया मेरे ! अबला की लाज बचाओ
कुल की ना ज्योति बुझाओ बुझाओ।
भैया मेरे ! अबला की लाज बचाओ।

शीलवती है मेरी भाभी सच्ची सती है मेरी भाभी !
सद्गुण-गौरव सुख सम्पत-मय जीवन के ताले की चाबी।
इसको न यों ही गंवाओ गंवाओ।

रो-रो पीछे पछताओगे सच कहता हूं दुख पाओगे।
सीता ! सीता ! रटते-रटते पूरे पागल बन जाओगे।
पहिले ही मन को समझाओ समझाओ।

कहना मानो अधिक न तानो अपनी भाभी को पहचानो।
आगे चल क्या दुष्फल होगा विज्ञ विचक्षण उसको जानो।
बिगड़ी को अब भी बनाओ बनाओ।

यों अकुलाकर क्यों करते हो क्यों यह अनुचित डग भरते हो।
अन्तर-घर में आकर बैठो क्यों इस जनता से डरते हो।
गुत्थी को अब मत उलझाओ उलझाओ।

तर्ज—ओ भैया ! मेरे राखी के बन्धन को

दोहा

'चुप रह लक्ष्मरण, क्या मुझे देता है तू सीख।
बोलेगा यदि और तो नही रहेगा ठीक।

अब न सुनूगा एक भी अनुज! किसी की बात।
गरज उठे राघव पुन, मार धरा पर लात'।

* क्रोध क्लेश से उद्वेलित हो अविरल आसू बरसाए,
तत्क्षरण लक्ष्मरण छोड सभा को उन्मन, घर को आ पाए।
भाभी का अपमान इधर है, उधर ज्येष्ट है तात समान,
कभी न पहुचो जैसी, वैसी आज लगी है ठेस महान।

'क्या करता है रे! कृतान्तमुख! बैठा-बैठा अभी यही,
दी आज्ञा जो मैने, क्या तू ने कानो से सुनी नही?
घोर विपिन मे उसे छोडना, सहज बला टल जाएगी।
नही रहेगा बास और बासुरी न बजने पाएगी।'

दोहा

स्खलित चरण, कम्पित वदन, आकृति अधिक उदास।
पहुचा सेनानी सपदि महासती के पास।

'उपवन मे आमोद से करने दोहद पूर्ण।
बुला रहे प्रभु आपको बैठो रथ मे तूर्ण।'

† ज्योही चलने को सज्ज हुई,
फड-फड फडका दक्षिरण लोचन,
यह क्या? इस मगल वेला मे,
क्यो होते हैं ऐसे अशकुन

---

* रामायरण
† सहनाग्णी

दोहा

या न दबाना है उचित सार्वजनिक विद्रोह।
अच्छा है हम छोड़ दें सीता का ही मोह।

सेनाध्यक्ष कृतान्तमुख ! जा कर तू यह काम।
मन में उनको छोड़ आ यों बोले श्रीराम।

सोरठा

भर नयनों में नीर राघव का मुंह ताकते।
बोले लक्ष्मण वीर रे भैया ! क्या कर रहे ?

ओ भैया ! मेरे ! भाभी को मत ठुकराओ
भैया मेरे ! अबला की लाज बचाओ
कुल की ना ज्योति बुझाओ बुझाओ।
भैया मेरे ! अबला की लाज बचाओ।

शीलवती है मेरी भाभी सच्ची सती है मेरी भाभी !
सद्गुण-गौरव सुख सम्पत मय जीवन के धाम की चाबी।
इसको न यों ही गवाओ गंवाओ।

रो-रो पीछे पछताओगे सच कहता हूं दुःख पाओगे।
सीता ! सीता ! रटते रटते पूरे पागल बन जाओगे।
पहिले ही मन को समझाओ समझाओ।

कहना मानो अभिमत न ताणो अपनी भाभी को पहचानो।
आग बल क्या दुष्फल होगा बिज्ञ विचक्षण उसको जानो।
बिगड़ी को अब भी बनाओ बनाओ।

यों अनुतापित क्यों करते हो क्यों यह अनुचित डग भरते हो।
अन्तर मन में आकर बैठो जो तुम जनता से डरते हो।
गुत्थी को अब मत उलझाओ उलझाओ।

लय—ओ भैया मेरे राखी के बन्धन को ...

ऐसा लगता है भाग्यदेव
देते हैं मेरा साथ नही।

जब चली वहा मे प्रथम-प्रथम
शकुनो ने मेरा पथ रोका,
क्या पता मुझे मिल जाएगा
यह अनायास ऐसा मौका,
जीवन मे पहली बार हुआ
मेरे से यह विश्वासघात,
जो कुछ होना था हुआ भ्रात!
बतलादे अब तू सही बात।'

गीतक छन्द

'मा! मुझे करदो क्षमा, मैं पूर्णत परतन्त्र हू,
समझ लो बस राम के द्वारा प्रचालित यन्त्र हू।
भृत्य जीवन से भली है, मृत्यु ही ससार मे,
मैं नियन्त्रित यथा बन्दी बन्द कारागार मे।

नही कृत्याकृत्य कुछ भी सोच सकता भृत्य है,
जो कहे स्वामी वही बस कृत्य उसका नित्य है।
दृष्टि के विपरीत उसका, बोलना भी पाप है,
दासता मनुजत्व का सबसे बडा अभिशाप है।

दीन से भी दीन होना, श्रेष्ठ अपर अधीन से,
हीन से भी हीन होना, श्रेष्ठ अपर अधीन से।
भली सूखी रोटिया, परतन्त्र के पकवान से,
भला है बलिदान, इस परतन्त्र के वरदान से।

दोहा

जिसको करते कापने लगता है चाण्डाल।
वह करना पडता मुझे, विवश काम विकराल।

होने दो मेरा क्या लेंगे
जब घुमा रहे हैं प्राणेश्वर
कुछ चिन्तित-सी कुछ विस्मित सी
सीधी बैठी रथ में आकर।

गीतक छन्द

समझ कुछ पाई नहीं सीता शकुन-मकन को
बढ़ा स्यन्दन शीघ्र गति से लांघता साकेत को।
नदी नालों पर्वतों को पार कर चलता गया,
सहज सरल स्वभाविनी को देख हा! छलना गया।

सिंहनाद अरण्य गया तीर पर रथ रुक गया
व्यथित सेनानी[1] सती के सामने आ झुक गया।
सजल पलकें मूक वाणी हृदय मुंह को आ रहा
फट रही छाती न कुछ भी जा सका उससे कहा।

दोहा

दारुण हृदय विलोक कर सीता रही अवाक।
'सेनानी ! क्या हो रही मेरे साथ मजाक।

अरे! बोलता क्यों नहीं बता किधर है राम।
मुझे कहां लाया यहां लेकर उनका नाम।

सेनानी शब्द न कह पाया
थर-थर करता आहें भरता
बोली वैदेही धीरज से
भाई! तू ऐसे क्यों करता?
कहने को कुछ भी कहना है
डरने की कोई बात नहीं

---

[1] सेनानी

ऐसा लगता है भाग्यदेव
देते हैं मेरा साथ नही।

जब चली वहा से प्रथम-प्रथम
शकुनो ने मेरा पथ रोका,
क्या पता मुझे मिल जाएगा
यह अनायास ऐसा मौका,
जीवन मे पहली बार हुआ
मेरे से यह विश्वासघात,
जो कुछ होना था हुआ भ्रात !
बतलादे अब तू सही बात।'

गीतक छन्द

'मा ! मुझे करदो क्षमा, मैं पूर्णत परतन्त्र हू,
समझ लो बस राम के द्वारा प्रचालित यन्त्र हू।
भृत्य जीवन से भली है, मृत्यु हो ससार मे,
मैं नियन्त्रित यथा बन्दी बन्द कारागार मे।

नही कृत्याकृत्य कुछ भी सोच सकता भृत्य है,
जो कहे स्वामी वही बस कृत्य उसका नित्य है।
दृष्टि के विपरीत उसका, बोलना भी पाप है,
दासता मनुजत्व का सबसे बडा अभिशाप है।

दीन से भी दीन होना, श्रेष्ठ अपर अधीन से,
हीन से भी हीन होना, श्रेष्ठ अपर अधीन से।
भली सूखी रोटिया, परतन्त्र के पकवान से,
भला है बलिदान, इस परतन्त्र के वरदान से।

दोहा

जिसको करते कापने लगता है चाण्डाल।
वह करना पडता मुझे, विवश काम विकराल।

* 'बांध बान्ध कर मधु-तटी पर बना हृदय पाषाण समान,
छोड़ रहा हूं यहां आपको मैं रघुवर की आज्ञा मान।
'हैं! क्या मुझे यहां छोड़ोगे ? हाय राम! यह क्या आदेश
गिरी मूर्छिता हो स्यन्दन से सह न सकी वह क्लेश विशेष।

दोहा

वैदेही को मृत समझ रोता कर अनुताप।
मां! तूने भी मढ़ दिया मेरे सर यह पाप।

कौन सुने किससे कहूं अपनी करुण पुकार।
परवश जीवन को अहो! सात-सात धिक्कार।

सोरठा

सीता हुई सचेत लगने से मृदु वन-पवन।
होकर पुन अचेत सहसा धरती पर गिरी।

दोहा

फिर सजा पा पूछती 'मेरा क्या था दोष ?
जिसके कारण राम ने किया भयंकर रोष।

† 'आकर लोगों की बातों में प्रभु ने ऐसा कदम उठाया।
कोई क्या जाने माताजी! जाने राम राम की माया।

पता नहीं किसने जनता में भारी भ्रम फैलाया।
लंका में लांछित होने का झूठा कलंक लगाया।

रोषारुण हो मन आपको इस वन में छुड़वाया।
हाय! अभागे इन हाथों से यह अकृत्य करवाया।

'क्या कमकिया बना मुझे यों रघुवर ने ठुकराया।
लक्ष्मणजी क्या करते थे ? भाई को नहीं मनाया।

---

* रामायण

† लय—दुनिया राम नाम नहि जाने

'बातें कही नही कहने की, भान्ति-भान्ति समझाया।
एक न मानी तो रोता अवरज अपने घर आया।'

† 'ले चल मेरे को एक बार
कहनी है, उनको दो बाते,
ठुकराना था तो कर कलक से
मुक्त खुशी से ठुकराते,
क्या मैं कोई ऐसी-वैसी,
क्या मेरा कुछ अस्तित्व नही,
यह स्पष्ट दीखता है पुरुषो मे
होता कुछ अपनत्व नही।

यदि कुछ ममत्व मन मे होता
करते न कभी विश्वासघात,
क्यो हाथ पकडकर लाए थे
जो निभा न सकते नाथ! साथ,
सबकी सुनली पर बात जरा
मेरे से भी तो कर लेते,
विश्वास न होता तो पीछे
जो चाहे आप दण्ड देते।'

दोहा

'वापिस जाने मे नही, माताजी! कुछ सार।
पत्थर के आगे सभी विनति है वेकार।'

'मत ले चल, यदि राम का तुझे नही आदेश।
पर कह देना तू उन्हे, यह मेरा सन्देश।

---

† सहनाणी

नहीं कहेगा तो तुझे मेरी है सौगन्ध।
क्या मेरे सन्देश पर भी कोई प्रतिबन्ध ?

† मेरी आशा के अमर सहारे
प्राणप्रिय नयन सितारे
टूटे जीवन-तन्त्री के तार हैं,
हो स्वामी! अबला का कौन कहो आधार है ?

मैंने बान्ध रखी थी कितनी आगे की आशाएं,
मन की मन में रहीं आज वे सारी अभिलाषाएं
अब मैं किसको क्या कहूं सुनाऊं ?
दु:ख के दिन कहां बिताऊं।
सूना-सूना लगता संसार है।

मैं गौरव से भूल रही थी मुझसी सुखी न नारी
मेरे घर में तीन खण्ड की सत्ता विपुला सारी
भारी रघुवर से प्रियतम मेरे
लक्ष्मण से देवर मेरे
उमड़ा प्रभुता का पारावार है।

युगल पुत्र के जन्मोत्सव का देखा स्वप्न सुनहला
होंगी पूर्ण कामनाएं सब है यह अवसर पहला
सबका समुचित सम्मान करूंगी
जी भर कर दान करूंगी
कितना विस्तृत मेरा परिवार है।

माताओं की शुभाशीष का शुभ फल मुझे मिलेगा
गुञ्जरित मंगल गीतों से गृह-आंगण खूब खिलेगा
होगा हर्षोत्सव भारत भर में
अभिनव खुशियां घर-घर में
बाजों-जयकारों की गुंकार है।

---

† लय—झूठी-झूठी दुनिया की प्रीत है

किन्तु आपने फेर दिया उन आशाओ पर पानी,
हाय! भिखारिन आज बनादी जो कल थी महारानी,
कैसी की है मेरे से छलना,
कलना इसकी करना दुश्वार है।

* राम कुछ भी न बिचारी रे!
क्या ऐसे ठुकराई जाती अबला नारी रे।
नाथ! कुछ भी न विचारो रे!
बात कुछ भी न विचारी रे।

कहा सुखो मे पली, कली-सी राजदुलारी रे!
कहा अकेली भटकू वाह! बालिम बलिहारी रे!

कहा स्वर्ग-सी सत्ता विभुता, प्रभुता भारी रे!
कहा अकेली भटकू वाह! बालिम बलिहारी रे!

सब मेरे प्रिय थे, लगती मैं सबको प्यारी रे!
आज वसन भी बैरी, वाह! बालिम बलिहारी रे!

मन की थाह रही मन मे सारी की सारी रे!
चढा शिखर पर सीधी ही पाताल उतारी रे!

राम-राज्य मे सभी सुखी, मैं ही दुखियारी रे!
कौन सुने? मैं किसे कहू अपनी लाचारी रे!

† कितना अच्छा रहता थोडा पहिले बतला देते,
अपनी शकाओ का समुचित समाधान कर लेते,
बोलो! इतना क्या मेरा भय था,
होता, क्या महाप्रलय था,
किसने की खडी बडी दीवार है।

---

* लय—मनवा नाथ विचारी रे

† लय—झूठी-झूठी दुनिया की प्रीत है

परम हर्ष होता यदि अपनी भूल समझ मैं पाती
स्वीकृत करने में न कभी भी मिथ्या चरित्र दिखाती
कोई अनशन उपवास न करती
करके अपघात न मरती
ऊँचे कुल का ऊंचा आचार है।

अन्तर-घर में क्यों न मार डाला अपने हाथों से
क्यों लांछित कर छोड़ी ऐसे लोगों की बातों से
मेरी इज्जत में धूल मिलाई
संचित सब आब गमाई
पुरुषों का कैसा अत्याचार ?

हाय राम ! क्या नारी का कोई भी मूल्य नहीं है
क्या उसका औदार्य शौर्य पुरुषों के तुल्य नहीं है
उसने ऐसा क्या पाप किया है
किसको संताप दिया है
जिससे मिलती पग-पग धुत्कार है।

दोहा

यों आहें भरती हुई फेंक रही निःश्वास।
देख रही धरती कभी और कभी आकाश।

कभी मौन हो सोचती टिका हाथ पर शीश।
कभी चीख में निकलती अन्तर मन की टीस।

री सीता ! क्यों कर रही व्यर्थ राम पर रोष।
वास्तव में तेरे सभी कृत-कर्मों का दोष।

क्या है इस जीवन में यों दुख ही दुख पाना ?
तिल-तिल जल-जल मन में रो-रो-कर मर जाना ?

लय—बेगो तुलसी महारणा

था जन्म लिया जब से,
भाई बिछुडा तब से,
आए सकट नाना, क्या है इस जीवन मे।

परिणय की शुभ वेला,
उसमे भी दुःख झेला,
क्या उसका बतलाना ? क्या है इस जीवन मे।

भटकी मैं जगल मे,
वर्षों तक जल-स्थल मे,
है किससे अनजाना, क्या है इस जीवन मे।

हा! मेरा हरण हुआ,
जीवित ही मरण हुआ,
महाभीषण रण ठाना, क्या है इस जीवन मे।

जब इतना दुःख भोगा,
अब तो कुछ सुख होगा,
यह मैने था माना, क्या है इस जीवन मे।

टूटे सारे सपने,
कोई न रहे अपने,
अब क्या होना जाना, क्या है इस जीवन मे।

† जो होना वह होगा मेरा कोई सोच नही है,
(पर) गर्भ-सुरक्षा करू कहा, बस चिन्ता एक यही है,
अब मैं जाऊ भी तो कहा जाऊ ?
कैसे ये प्राण बचाऊ ?
दो-दो बच्चों का पूरा भार है।

लय—झूठी-झूठी दुनिया की प्रीत है

परम हर्ष होता यदि अपनी भूल समझ में पाती
स्वीकृत करने में न कभी भी त्रिया चरित्र दिखाती
कोई अनशन उपवास न करती
करके अपघात न मरती
ऊंचे कुल का ऊंचा आचार है।

अन्तर-भर में क्यों न मार डाला अपने हाथों से
क्यों लांछित कर छोड़ी ऐसे लोगों की बातों से
मेरी इज्जत में धूल मिलाई
सचित सब आब गमाई
पुरुषों का कैसा अत्याचार ?

हाय राम ! क्या नारी का कोई भी मूल्य नहीं है
क्या उसका औदार्य शौर्य पुरुषों के तुल्य नहीं है
उसने ऐसा क्या पाप किया है
किसको संताप दिया है
जिससे मिलती पग-पग दुत्कार है।

दोहा

यों आह भरती हुई, फैंक रही निःश्वास।
देख रही धरती कभी और कभी आकाश।

कभी मौन हो सोचती टिका हाथ पर शीश।
कभी चीख में निकलती अन्तर मन की टीस।

री सीता! क्यों कर रही व्यर्थ राम पर रोष।
वास्तव में तेरे सभी कृत-कर्मों का दोष।

क्या है इस जीवन में यों दुःख ही दुःख पाना ?
तिल-तिल जल-जल मन में रो-रो कर मर जाना ?

लय—छोगो तुलसी महाराज

था जन्म लिया जब से,
भाई बिछुडा तब से,
आए सकट नाना, क्या है इस जीवन मे।

परिणय की शुभ वेला,
उसमे भी दुख झेला,
क्या उसका बतलाना ? क्या है इस जीवन मे।

भटकी मैं जगल मे,
वर्षों तक जल-स्थल मे,
है किससे अनजाना, क्या है इस जीवन मे।

हा ! मेरा हरण हुआ,
जीवित ही मरण हुआ,
महाभीषण रण ठाना, क्या है इस जीवन मे।

जब इतना दुख भोगा,
अब तो कुछ सुख होगा,
यह मैने था माना, क्या है इस जीवन मे।

टूटे सारे सपने,
कोई न रहे अपने,
अब क्या होना जाना, क्या है इस जीवन मे।

† जो होना वह होगा मेरा कोई सोच नही है,
(पर) गर्भ-सुरक्षा करू कहा, बस चिन्ता एक यही है,
अब मैं जाऊ भी तो कहा जाऊ ?
कैसे ये प्राण बचाऊ ?
दो-दो बच्चो का पूरा भार है।

लय—झूठी-झूठी दुनिया की प्रीत है

प्रजापाल भूपाल खूब अपना कर्तव्य निभाया,
भावी पीढ़ी को भावुक बन भारी पाठ पढ़ाया,
मन में मेरी मत चिन्ता करना
रो रो आँखें मत भरना,
बस अपना इतना ही संस्कार है।

दोहा

रे कृतान्तमुख ! है यही मेरी अन्तिम बात।
कहना सविनय राम से भूल न जाना भ्रात।

† रवि ने त्यागी है प्रखर-प्रभा,
शशधर ने शीतलता छोड़ी
अम्बुज ने अपने सौरभ से
मन ने ध्वनि से मैत्री तोड़ी
क्या पता कौनसे पूर्वार्जित
कर्मों की भीषण मार हुई
की नहीं कल्पना जिसकी भी
वह आज स्पष्ट साकार हुई।

अनभिज्ञ रही मैं इतने दिन
यह बात नाथ! अब जान गई
बहकावे में आ परित्याग
करना अपनाई प्रकृति नई
इस अभ्याविष्कृत शैली का
मेरे पर प्रथम प्रयोग हुआ
इन अविच्छिन्न संयोगों का
पल भर में हाय! वियोग हुआ।

---

† पहनाणी

पर नास्तिकता के ऊमर जाल मे
आप कही मत आ जाना,
मिथ्या तत्त्वो के चगुल मे
फस सत्य-धर्म मत ठुकराना,
चल सकता मेरे बिना काम,
पर नही चलेगा धर्म विना,
सुख-शान्ति-सम्पदा सुर तरुवर
यह नही फलेगा धर्म बिना।

मेरी अनुपस्थिति मे कृपया
प्राणेश्वर! बने रहे धार्मिक,
जीवन मे कभी नही भूले
हृदयेश्वर! ये बातें मार्मिक,
हैं आप सूर्य कुल कमल सूर्य,
वैडूर्य तुल्य नव ज्योतिर्धर,
हो चिरजीव जय-विजय वरें,
आनन्द करे भारतशेखर।

लक्ष्मण को कहना शुभाशीष,
रखना अधीश का पूर्ण ध्यान,
वे ही तो अपने सब कुछ हैं
तुम स्वय विज्ञ हो विनयवान,
मेरे पर सत्य सहानुभूति
इस सकट स्थिति मे दिखलाई,
उसका आभार भार मन पर
जीवन भर क्या भूलू भाई!

१ मेरी सारी प्रिय बहिनों को यथायोग्य कहना सोल्लास,
प्रभु के इंगित पर सब चलना करना प्राप्त पूर्ण विश्वास।
क्षमत-क्षमणा सबसे मेरा जाना सकुशल स्वामी पास
कहती-कहती गिरी धरा पर फेंक एक लम्बा निःश्वास।

: ४ :

अनुताप

† मेरी सारी प्रिय बहिनों को यथायोग्य कहना सोल्लास
प्रभु के इंगित पर सम चलना करना प्राप्त पूर्ण विश्वास।
'क्षमत-क्षमणा' सबसे मेरा, जाना सकुशल स्वामी पास,
कहती-कहती गिरी धरा पर फेंक एक लम्बा निःश्वास।

---

† रामायण

गीतक छन्द

विषम वन की वीथिका पर जाल कांटो के पडे,
रोकने चलते चरण को व्यग्र हो वैसे खडे।
भयोत्पादक विकल-सी वे तुमुल कल-कल नादिनी—
वह रही उन्मत्त नदिया विविध भावोत्पादिनी।

गहन भगी, शिखर जगी, पूर्ण तम का राज्य है,
सघन सावन घन घटा से हो रहा वह प्राज्य है।
हृदय मे सौदामिनी उत्पन्न करती सनसनी,
चल रहा शीतल पवन, ज्यो प्रेयसी हो उन्मनी।

वारिदो के व्यूह से लगती सुनील वनस्थली,
आत्म-गुण को यथा आवृत कर रही कर्मावली।
भटकती व्याकुल मृगी ज्यो, हा! अकेली जानकी,
है न कोई भी सहारा, बस शरण भगवान् की।

दोहा

भय-भ्रान्त-सी भामिनी भरती है डग एक।
फिर रुक जाती, सामने वन्य जन्तु को देख।

सघन विटप के वक्ष मे छुपती है ले ओट।
आहत हो गिरती कही, खा पत्थर की चोट।

गीतक छन्द

वन-विडाल, शृगाल, शूकर हैं परस्पर लड रहे,
द्विरद मद भरते कही दन्तूशलो से भिड़ रहे।

गीतक छन्द

विषम वन की वीथिका पर जाल काटो के पडे,
रोकने चलते चरण को व्यग्र हो वैसे खडे।
भयोत्पादक विकल-सी वे तुमुल कल-कल नादिनी—
बह रही उन्मत्त नदिया विविध भावोत्पादिनी।

गहन झगी, शिखर जगी, पूर्ण तम का राज्य है,
सघन सावन घन घटा से हो रहा वह प्राज्य है।
हृदय मे सौदामिनी उत्पन्न करती सनसनी,
चल रहा शीतल पवन, ज्यो प्रेयसी हो उन्मनी।

बारिदो के व्यूह से लगती सुनील वनस्थली,
आत्म-गुण को यथा आवृत कर रही कर्मावली।
भटकती व्याकुल मृगी ज्यो, हा! अकेली जानकी,
है न कोई भी सहारा, बस शरण भगवान् की।

दोहा

भय-भ्रान्त-सी भामिनी भरती है डग एक।
फिर रुक जाती, सामने वन्य जन्तु को देख।

सघन विटप के वक्ष मे छुपती है ले ओट।
आहत हो गिरती कही, खा पत्थर की चोट।

गीतक छन्द

वन-विडाल, शृगाल, शूकर हैं परस्पर लड रहे,
द्विरद मद झरते कही दन्तूशलो से भिड रहे।

अमल पुष्पास्फोट करते कहीं मृगपनि घूमते
भेड़िये भालू भयंकर घोर श्वापद झूमते।

दोहा

सती ढूंढती फिर रही कहीं सुरक्षित स्थान।
म्लान मना निम्नानना कांप रहे हैं प्राण।

जाए तो जाए कहां कौन सुने चित्कार।
अपने इस नारीत्व को देती है धिक्कार।

छन्द

अपमानों से भरा हुआ है नारी-जीवन
अरमानों से भरा हुआ है नारी-जीवन।
अभिमानों से डरा हुआ है नारी-जीवन
बलिदानों से घिरा हुआ है नारी जीवन।

नारी का अस्तित्व रहा नर के हाथों में
नारी का व्यक्तित्व रहा नर के हाथों में।
नारी का अपनत्व रहा नर के हाथों में
नारी का सब सत्व रहा नर के हाथों में।

पुरुषों में नारी का कोई स्थान नहीं है
पुरुषों में नारी का कोई मान नहीं है।
पुरुषों का नारी पर कुछ भी ध्यान नहीं है
इसीलिए कर पाती वह उत्थान नहीं है।

जिसने दु ख में भी पुरुषों का साथ निभाया
अर्धाङ्गिनी रही नित तन के पीछे छाया।
पर पुरुषों ने यह उसका आभार चुकाया
सुख में झूठी पत्तल ज्यों उसको ठुकराया।

अथवा उसे बनाकर रक्खा अधिकारों में
जकड़ लिया हा! कृत्रिम लज्जा के तारों में।

पलने नही दिया निसर्गज सस्कारो मे,
फलने नही दिया यदृच्छा व्यवहारो मे।

है पुरुषो के लिए खुली यह वसुधा सारी,
पर नारी के लिए सदन की चारदिवारी।
सूर्य देखना भी होता महाभारत भारी,
किसे कहे अपनी लाचारी, वह बेचारी।

मार मार वह अपने मन को सब कुछ सहती,
जैसा होता, नही किसी से कुछ भी कहती।
चिन्ता सदा चिता बन उसको दहती रहती,
व्यथा हृदय की छल-छल कर पलको से बहती।

पुरुष-हृदय पाषाण भले ही हो सकता है,
नारी-हृदय न कोमलता को खो सकता है।
पिघल-पिघल उनके अन्तर को धो सकता है,
रो सकता है, किन्तु नही वह सो सकता है।

जिसने जन्म दिया है, अपना दूध पिलाया,
स्वय दु खिता रह पुरुषो को सुख पहुचाया।
समय-समय वीरत्व जगा सम्मान बचाया,
हा! उसको ताडन का अधिकारी ठहराया।

चल न सकेगा पुरुषो! अत्याचार तुम्हारा,
पल न सकेगा पुरुषो! पापाचार तुम्हारा।
फल न सकेगा पुरुषो! दुर्व्यवहार तुम्हारा,
छल न सकेगा पुरुषो! झूठा प्यार तुम्हारा।

नारी क्या तेरे मे भी कुछ ज्ञान नही है?
नारी क्या तेरे मे भी कुछ भान नही है?
नारी क्या तेरे मे अपना मान नही है?
क्या तेरे चिन्तन मे कुछ भी प्राण नही है?

अपने बल पर नारी तुझे जागना होगा
कृत्रिम आभरणों को तुझे त्यागना होगा।
लो सन्तुलन भीत हो नहीं भागना होगा
सत्य क्रान्ति का अभिनव अस्त्र दागना होगा।

दोहा

यों चिन्तन करते विविध जाग उठा वीरत्व।
लगा वदन में झलकने वह सतीत्व का सत्व।

† अनजाने अति बीहड़ पथ पर
आगे से आगे सती चली
कांटों से बींधे चरण युगल
शोणित की धारा सी निकली
उस झांय झांय करती झंगी—
में मानव का तो नाम नहीं
भीषणता बढ़ती जाती है
कायर मन को विश्राम नहीं।

करती है कभी आत्म-चिन्तन
अन्तर आवेग हटाने को
रटती जाती है 'णमुक्कार
महामन्त्र शान्ति सुख पाने को
अरिहन्त सुगुरु सद्धर्म बिना
है कोई भी अब त्राण नहीं
डिग जाता ऐसी स्थितियों में
जिसकी श्रद्धा सप्राण नहीं।

उस देख बिलखते आनन को
सारी वनस्थली रोती है

† बहनाणी

उन विकल वन्य जीवो के भी
मानस मे पीडा होती है,
करने वे मूक सहानुभूति
सब घेर सती को लेते है,
कर रहे प्रदर्शित सहज स्नेह
सक्लेश न किंचित् देते हैं।

तरु-वल्लरियो से घिरे सघन—
कुजो मे रात विताती है,
अनुकूल फूल, फल तोड-तोड
जो मिलते उनको खाती है,
जब मन अति उद्वेलित होता
बरबस रोती-चिल्लाती है,
होते ही स्मरण गर्भ का फिर
रोती-रोती रुक जाती है।

दोहा

होता है अति दु ख के पीछे सुख-सचार।
अत्युष्मा मे दीखते वर्षा के आसार।

* दूर दिखाई पडे सती को कुछ सशस्त्र मानव आते,
जिधर स्वय है, उधर वे सभी अविरल गति बढते जाते।
होगा यहा दस्यु-दल कोई, जो आता है मेरी ओर,
आने से पहिले ही रख दू सम्मुख गहने सभी बटोर।

दोहा

यो चिन्तन कर आभरण तत्क्षण दिये उतार,
उच्च स्वर रटने लगी महामन्त्र नवकार।

---

* रामायण

* अरिहन्त सिद्ध साहू धम्म शरणं सुपवज्जामि
विघ्न-हरण मंगलमय तेरा स्मरण सदा अन्तर्यामी।
वन में आई फिर भी अब तक नहीं आपदा का अवसान
क्या जाने क्या होगा बाकी अब भी मेरा है भगवान् !

गीतक छन्द

त्वरित गति से इधर वे सन्नद्ध सैनिक आ गए
इंगितों से लगा ऐसा लक्ष्य को वे पा गए।
दूर रहना वन पड़ा है जो तुम्हें जो चाहिए
कहा नायक ने बहिनजी ! आप मत घबराइए।

दोहा

कौन आप ? कैसे यहां ? क्या है पावन नाम ?
परित्याग यों आपका किस निष्ठुर का काम ?

हिंसक डाकू भील जन बसते चारों ओर।
श्वापद-संकुल अति विकट 'सिंहनाद' वन घोर।

गर्भवती लगती सती प्रसव-काल आसन्न।
बहिन ! कहो इतिवृत्त सब मत रखना प्रच्छन्न।

सोरठा

नहीं बोलती मौन सती शान्त सब सुन रही ?
पता नहीं ये कौन ? दुःख कहूं कैसे इन्हें ?

सुख-दुःख उनके पास निर्भय कहते सुज्ञ-जन।
जिनके प्रति विश्वास होता आत्मा में अटल।

---

* रामायण

* वोला मधुर स्वर मन्त्रीश्वर
मा † पूर्णतया निश्चिन्त रहो,
ये पुडरीक पुर के स्वामी
इनके आगे सब स्पष्ट कहो,
है दयावान् धार्मिक शासक
न्यायी, सुविवेकी, महाभाग,
पर-प्रिया-बन्धु अपने उज्ज्वल
कुल पर न लगाया कभी दाग।

आए करने मृगया वन मे
सुन पडा आपका आक्रन्दन,
तत्क्षण करुणार्द्र नरेश्वर के—
मानस मे हुआ सहज स्पन्दन,
ऐसे सकट मे देख कहो
किसका होता दिल द्रवित नही,
आवश्यक सारे काम छोड
नरवर को आना पडा यही।

दोहा

हुआ परम सन्तोष सुन ये बाते विश्वस्त।
वैदेही कहने लगी स्वस्थ-मना आश्वस्त।

* दोनो अखिया सजल,
टूटा धीरज का बल,
गद्गद् वाणी,
रुक-रुक कर कहती है करुण कहानी।

---

† सहनाणी
* लय—गम दिए मुस्तकिल

मैं हूं मिथिला की राजकुमारी,
जनक विदेहा की पुत्री प्यारी
लालों सुख में पली
कोमल कुसुम कली
वाह! पुण्यवानी
एक-एक कर कहती है करुण कहानी।

राजा दशरथ के घर में ब्याही
विभुता प्रभुता मिली मन चाही,
वासुदेव प्रवर
लक्ष्मण मेरे देवर
हूं राघव रानी
एक-एक कर कहती है करुण कहानी।

† उमड़ा दुःख का ज्वार है
सारे चिन्ताकार हैं
पत्थर को पिघलाने वाले सीता के उद्‌गार हैं।

अम्बर से मैं गिरी हाय! अब नहीं झेलती धरती
टुकड़े-टुकड़े हृदय हो रहा रो रो आहें भरती
टूटा मन का तार है
छूटे सब आधार हैं
पत्थर को पिघलाने वाले सीता के उद्‌गार हैं।

लोक-कथन पर बस कलंकिता घर से मुझे निकाली
सीता के असती है होगी घर घर आज दिवाली
नैया यह मझधार है
नहीं छोर उस पार है
पत्थर को पिघलाने वाले सीता के उद्‌गार हैं।

---

† लय—किस बेदरद है

भूल रही हू मैं इसमे, औरो को दोषी ठहराती,
'अत्त कडे दुक्खे न परकडे' आगम वाणी बतलाती,
सब कर्मों की मार है,
रोष-दोष बेकार है,
पत्थर को पिघलाने वाले सीता के उद्गार हैं।

मान रही हू अपमानित, इस जीवन से अच्छा मरना,
पर इन उदरस्थो का भी होगा समुचित रक्षण करना,
सबसे बडा विचार है,
पूरा मन पर भार है,
पत्थर को पिघलाने वाले सीता के उद्गार हैं।

* जो हुआ सो हुआ तुम जाओ,
दुखिया के पीछे मत दुःख पाओ,
कोई चारा नही,
अन्तिम घडिया यही है बितानी,
रुक-रुक कर कहती है करुण कहानी।

इससे आगे कुछ कहने न पाती,
रोती जाती औरो को रुलाती,
करुणा रस से सना,
वातावरण बना पानी-पानी,
रुक-रुक कर कहती है करुण कहानी।

दोहा

सन्न रहे सुनकर सभी कुछ क्षण तक निस्तब्ध।
बोला महिपति चरण छू, बद्धाञ्जलि मृदु शब्द।

---

* लय—गम दिए मुस्तकिल

भूल रही हू मैं इसमे, औरो को दोपी ठहराती,
'अत्त कडे दुक्खे न परकडे' आगम वाणी बतलाती,
सब कर्मों की मार है,
रोष-दोप बेकार है,
पत्थर को पिघलाने वाले सीता के उद्गार है।

मान रही हू अपमानित, इस जीवन से अच्छा मरना,
पर इन उदरस्थो का भी होगा समुचित रक्षण करना,
सबसे बडा विचार है,
पूरा मन पर भार है,
पत्थर को पिघलाने वाले सीता के उद्गार हैं।

* जो हुआ सो हुआ तुम जाओ,
दुखिया के पीछे मत दु.ख पाओ,
कोई चारा नही,
अन्तिम घडिया यही है बितानी,
रुक-रुक कर कहती है करुण कहानी।

इससे आगे कुछ कहने न पाती,
रोती जाती औरो को रुलाती,
करुणा रस से सना,
वातावरण बना पानी-पानी,
रुक-रुक कर कहती है करुण कहानी।

दोहा

सन्न रहे सुनकर सभी कुछ क्षण तक निस्तब्ध।
बोला महिपति चरण छू, बद्धाञ्जलि मृदु शब्द।

---

* लय—गम दिए मुश्तकिल

* बाईजी ! अपने घर आओ
देकर सेवा का शुभ अवसर,
मेरा मन उपवन सरसाओ ।
बाईजी ! अपने घर आओ ।

आश्चर्य आप जैसी विदुषी
साध्वी पर यह दूषित लांछन,
राघव की निष्ठुरता विलोक
हम सबके काम्प रहे हैं मन,
अनहोनी ऐसी बातें भी
हो जाती जग में कभी-कभी
इस होनहार के आगे तो
झुकते मानव सुर-असुर सभी ।
यह संकट नहीं कसौटी है
धीरज से मन को समझाओ ।
बाईजी ! अपने घर आओ ।

मैं धन्य हुआ इस कानन में
पा महासती के शुभ दर्शन
इससे बढ़कर क्या हो सकता
मेरे जीवन का उत्कर्षण
लो चलो देर मत करो करो—
उस लघु कुटिया को भी पावन
यह घर है बहिन ! तुम्हारा ही
मन में न और करना चिन्तन
भामण्डल तुल्य मुझे समझो
पीहर आते मत सकुचाओ ।
बाईजी ! अपने घर आओ ।

---

* तरमागी

चेहरे की चमक बताती है
गलती न तुम्हारी रत्ती भर,
लगता है बडा कुचक्र चला
दुष्टो का दाव लगा जी भर,
तुम पूर्णतया निश्चिन्त रहो
ये लोक हसें तो हसने दो।
हलवा खाते भी दान्त घिसे—
तो बडी खुशी से घिसने दो,
भाई की भाप भावनाए
वात्सल्य सुधा रस बरसाओ।
बाई जी! अपने घर आओ।

बाई! मै निश्चित कहता हू
अब जीजाजी पछताएगे,
वे उन्मन तुम्हे ढूंढने को
शीघ्रातिशीघ्र ही आएगे,
पर तुम्हे नही जब पाएगे,
अकुलाएगे, घबराएगे,
धीरज देते लक्ष्मण जी आसू—
पोंछ-पोछ थक जाएगे।
सज्जित शिविका तैयार पडी
लो बैठो, अधिक न तरसाओ।
बाई जी! अपने घर आओ।

सोरठा

सीता को सानन्द, वज्रजघ लाया स्वगृह।
अति घनिष्ट सम्बन्ध, जुडा एक परिवार-सा।

* बाईजी ! अपने घर आओ
देकर सेवा का शुभ अवसर,
मेरा मन उपवन सरसाओ।
बाईजी ! अपने घर आओ।

आश्चर्य आप जैसी विदुषी
साध्वी पर यह दूषित लांछन,
राघव की निष्ठुरता विलोक
हम सबके काम्प रहे हैं मन
अनहोनी ऐसी बातें भी
हो जाती जग में कभी-कभी
इस होनहार के आगे तो
झुकते मानव सुर असुर सभी।
यह संकट नहीं कसौटी है
धीरज से मन को समझाओ।
बाईजी ! अपने घर आओ।

मैं धन्य हुआ इस कानन में
पा महासती के शुभ दर्शन
इससे बढ़कर क्या हो सकता
मेरे जीवन का उत्कर्षण
लो चलो देर मत करो करो—
उस लघु कुटिया को भी पावन
यह घर है बहिन ! तुम्हारा ही
मन में न और करना चिन्तन
भामण्डल तुल्य मुझे समझो
पीहर आते मत सकुचाओ।
बाईजी ! अपने घर आओ।

---

* सहनाणी

चेहरे की चमक बताती है
गलती न तुम्हारी रत्ती भर,
लगता है बडा कुचक्र चला
दुष्टो का दाव लगा जी भर,
तुम पूर्णतया निश्चिन्त रहो
ये लोक हसे तो हसने दो।
हलवा खाते भी दान्त घिसे—
तो बडी खुशी से घिसने दो,
भाई की भाप भावनाए
वात्सल्य सुधा रस बरसाओ।
बाई जी! अपने घर आओ।

बाई! मैं निश्चित कहता हू
अब जीजाजी पछताएगे,
वे उन्मन तुम्हे ढूढने को
शीघ्रातिशीघ्र ही आएगे,
पर तुम्हे नही जब पाएगे,
अकुलाएगे, घबराएगे,
धीरज देते लक्ष्मण जी आसू—
पोछ-पोछ थक जाएगे।
सज्जित शिविका तैयार पडी
लो बैठो, अधिक न तरसाओ।
बाई जी! अपने घर आओ।

सोरठा

सीता को सानन्द, वज्रजघ लाया स्वगृह।
अति घनिष्ट सम्बन्ध, जुडा एक परिवार-सा।

दोहा

आयो दुख में सुख मिला तम में नया प्रकाश।
ज्ञान ध्यान स्वाध्याय रत करती धर्माभ्यास।

गीतक छन्द

यहाँ आवागमन सतियों का सतत रहने लगा
स्रोत श्रुत-आराधना का अनवरत बहने लगा।
एक छोटी ज्ञानशाला-सी सहज ही बन गई
प्रेरणाएं मैथिली देती सदैव नई-नई।

सुगम अक्षर बोध दे नव तत्त्व भी सिखला रही
धर्म का व्यवहार में सत्पथ उन्हें दिखला रही।
सुप्त नारी-चेतना को पुन जागृत कर रही
सादगी श्रम संगठन की भावनाएं भर रही।
कभी भजनों का सरस रस टपकता संगीत में
विचरती सब कभी सोत्सुक स्वानुभूत अतीत में।
कभी सह स्वाध्याय तो होती कभी अन्त्याक्षरी
कभी चलती मधु कथाएं विविध शिक्षा से भरी।

कभी होता था विवेचन दया-दान विचार का
कभी विश्लेषण विशद आचार का व्यवहार का।
कभी रहता विषय भाषण में समाज सुधार का
कभी चिन्तन हुआ करता अणुव्रत परिवार का।
भूलने को दु ख के दिन यही साधन श्रेष्ठ है
परोन्नति के साथ मिलती आत्म-शान्ति यथेष्ट है।
कौन है ? कैसे ? कहाँ क्यों ? जानता कोई नहीं
बहिनजी ! के नाम से अख्यात पुर में हो रही।

सोरठा

प्रतिपल हर्ष विभोर, सुखपूर्वक सीता यहा।
अवधपुरी को ओर, अब थोडा-सा झाक ले।

दोहा

भृकुटी चढी अवधेश की जलते ज्यो अगार।
प्राची के रवि सा बना आखो का आकार।

विविध चिन्तनो मे विकल, है ना कोई पास।
सभी सभासद दूर ही बैठे मौन उदास।

आ कृतान्तमुख ने निकट विधियुत किया प्रणाम।
'रे सेनानी! आ गया?' पूछ रहे श्रीराम।

'हा आया कर काम सब प्रभु आज्ञा अनुसार।
छोडी ले जा जानकी सिहनाद कातार।'

* वह घोर भयावह जगल है
जहा छोडी मैंने महासती,
यह पराधीनता का फल है।
वह घोर भयावह जगल है।

उसमे आगे रथ चला नही
घोडो की टापे रुकी वही,
काटो, उपलो मे चल न सके
थे भूखे-प्यासे और थके,
हो गए हाथ लोहू-लुहान
हाके द्रुत मारुत के समान,

---

*तहनाणी

दोहा

मानो दुख में सुख मिला तम में नया प्रकाश।
ज्ञान ध्यान स्वाध्याय रत करती धर्माभ्यास।

गीतक छन्द

यहां आवागमन बहिनों का सतत रहने लगा
ज्ञान श्रुत-आराधना का अनवरत बहने लगा।
एक छोटी ज्ञानशाला-सी सहज ही बन गई
प्रेरणाएं मैथिली देती सदैव नई-नई।

सुगम अक्षर बोध दे नव तत्त्व भी सिखला रही
धर्म का व्यवहार में सत्पथ उन्हें दिखला रही।
सुप्त नारी चेतना को पुन जागृत कर रही
सादगी श्रम सगठन की भावनाएं भर रही।
कभी भजनों का सरस रस टपकता संगीत में
विचरती सब कभी सोत्सुक स्वानुभूत अतीत में।
कभी सह स्वाध्याय तो होती कभी अन्त्याक्षरी
कभी चलती मधु कथाएं विविध शिक्षा से भरी।

कभी होता था विवेचन दया-दान विचार का
कभी विश्लेषण विचार आचार का व्यवहार का।
कभी रहता विषय भाषण में समाज सुधार का
कभी चिन्तन हुआ करता अणुव्रत परिवार का।
भूलने को दु ख के दिन यही साधन श्रेष्ठ है,
पराम्नति के साथ मिलती आत्म-शान्ति यथेष्ट है।
कौन है ? कैसे ? कहां क्यों ? जानता कोई नहीं
बहिनजी ! के नाम से प्रख्यात पुर में हो रही।

आखो मे रोष लगा बहने
वाणी मे जोश लगा बहने,
आत्मा मे होश लगा बहने
मन मे आक्रोश लगा बहने,
वह नगरी कितनी दूर अरे!
कहा बैठे राघव क्रूर अरे!
मेरे से किया बडा छल है
वह घोर भयावह जगल है।

जाकर उनसे लोहा लूगी
सब प्रश्नो के उत्तर दूगी,
पुछूगी क्यो ऐसे छोडा?
क्यो मेरे से नाता तोडा?
वे पुरुष-पात्र कहलाते है
अबला को यो ठुकराते है,
क्या पैरो की जूती नारी
जो सहे यातनाए सारी,
क्या सीता इतनी निर्बल है
वह घोर भयावह जगल है।

दोहा

मैंने धीरज से कहा जाना है निस्सार।
अब इतना ही मानिए राघव से सस्कार।

भैया अच्छी बात है, लेजा यह सन्देश।
मैं चाहे जैसे रहू, सुखी रहे प्राणेश।

सुनते ही अवधेश का उतर गया आवेश।
आगे उसने क्या कहा? बतला जरा विशेष।

ऊबड़-खाबड़ टेढ़ी धरती
दिन में भी सांय-सांय करती,
झरती निर्झरिणी कल-कल है
यह घोर भयावह जंगल है।

था पथ का कोई पता नहीं
इति अथ का कोई पता नहीं
ज्योंही था स्यन्दन को रोका
तत्क्षण माताजी ने टोका,
मैंने जब सच्ची बात कही
मूच्छित हो रथ से गिरी मही
भावस्मित भृत मैंने माना
दुष्कर है यह स्थिति बतलाना
टूटा सब धीरज का बल है
यह घोर भयावह जंगल है।

तब किंकर्तव्य विमूढ़ हुआ
सन्ताप मूढ़ स गूढ़ हुआ
चैतन्य पवन प्रेरित पाया
तो मेरे जी में जी आया
विहृल-सी वे विक्षिप्त बनी
आंखों में था छाई रजनी
कहना चाहती कह ना पाती
कभी छाती फिर मूर्छाती,
छुपा जीवन का संबल है
यह घोर भयावह जंगल है।

उपा-र्या मन को मजबूत बना
वेदिन कर लिया दुःख घना

* सीताजी ने कहलाया है
माताजी ने कहलाया है
पय-मिश्री का अप्रतिम प्रेम
प्रभुवर ने खूब निभाया है।

सच कहती हूं भ्रात! मुझे
होता थोड़ा भी ज्ञात मुझे
यों प्रियतम प्रेम पराङ्मुख है
क्यों समता यह आघात मुझे
होती न गर्भ की जो चिन्ता
कर लेती निश्चित आत्मघात
पाती न बिगड़ने कभी बात
यह नहीं देखती काल रात।
पर विधि की उलटी माया है
कोई न समझने पाया है।
माताजी ने कहलाया है।

क्यों किया नाथ! विश्वासघात
जो कहनी कहते स्पष्ट बात
सीता न कमीनी थी इतनी
क्यों रखा ईश न पक्षपात
अब तक जितने भी किये काम
उन सबमें उज्ज्वल हुआ नाम
जीवन की है पहली घटना
सम्मुख हो दिया हाथ राम!
किसने यह चक्र चलाया है
क्यों ऐसा कदम उठाया है।
माताजी ने कहलाया है।

---

* कहलाती

कैसे प्रतिकूल प्रवाह वहा
कुछ भी जा सकता नही कहा,
नस-नस में उनकी जान रही
अति भावुक-भद्र स्वभाव रहा,
जो हुआ दोष सब मेरा है
निर्दोष निरन्तर रहे राम,
कृत कर्मों का ही कुपरिणाम
जिससे उनकी मति हुई वाम।
झूठा कलक यह आया है
रवि के रहते तम छाया है।
माताजी ने कहलाया है।

ममता की गाठे शिथिल हुई
भावो को गगरी फूट गई,
निर्यामक का मुह फिरते ही
पतवार हाथ से छूट गई,
सीता की सरिता सूख गई
सपनो की रजनी रूठ गई,
अब क्या जीने मे जीना है
जब आकाक्षाए टूट गईं।
सब गतरस किया कराया है
न्यारी काया से छाया है।
माताजी ने कहलाया है।

सोरठा

यो करती अनुताप, तत्क्षण मूर्च्छित हो गई।
सज्ञा पा चुपचाप, आहे भर रोने लगी।
ले प्रभुवर का नाम, उपालम्भ देती रही।
पूछ रहे श्रीराम, मागे उसने क्या कहा?

की नभ से ऊंची क्यों ? यदि मां—
गौरव से मुझे गिराना था
क्यों ये सुख के दिन दिखलाए—
यदि यह दुर्दिन दिखलाना था
हाथों से मार गिराना था
विषधर विष मुझे पिलाना था
लज्जा में ही मैं मर जाती
मां करके नहीं जिलाना था ।
क्यों गुत्थी को उलझाया है
जीवन को जटिल बनाया है ।
माताजी ने *कहलाया है ।

गीतक छन्द

फिर गिरी हो मूर्च्छिता चैतन्य पा रोने लगी,
आंसुओं से आर्द्र मानो मेदिनी होने लगी ।
वन्य पशु भी आ गए अति खिन्न होकर म्लान से
सुन रहे बातें सभी सापेक्ष पूरे ध्यान से ।

† रामजी हो ! रामजी ! श्री रामजी ! जीवन की नाव बढ़ाना हो ।
मेरा अन्तिम नम्र निवेदन इसे भूल मत जाना हो ।

और किया सो किया आपने एक काम मत करना ।
बड़े विषम इस मायिक युग में फूंक-फूंक पग धरना ।

ऐसे मानव जन्म गए जो पर-सुख दुर्बल होते ।
स्वयं डूबते औरों की नैया मझधार डुबोते ।
पल, में, गुरुता, स्वामी, अपनी, अधिकृत, को, प्रीति ।
अम्बुज उगा दिया अम्बर में कैसी हाय ! अनीति ।

---

* सहलाणी
† लय—राजना रमका

सत्य-धर्म को नही छोडना सुनकर उनकी बातें।
नास्तिक मिथ्यात्वी-जन पग-पग रहते जाल बिछाते।

सूर्यवश के सूर्य निभाना अपने कुल की रीति।
चिरजीव चिरकाल रहो प्रभु, फलो सदा सन्नीति।

दोहा

पूरी भी होने नही पाई उसकी बात।
वज्राहतवत् गिर पडे, मूच्छित हो रघुनाथ।

सोरठा

कर शीतल उपचार, किया सजग सबने उन्हे।
उमडा दुख का ज्वार, लम्बी आहे भर रहे।

*आखो मे आसू आते हैं, रह-रह पछताते हैं।
उठ-उठ कर दौडे जाते हैं, रह-रह पछताते हैं।

सुध-बुध भूले अर्ध ग्रथिल से करते सीता! सीता!
अरी! प्रेयसी बिना तुम्हारे मैं न रहूगा जीता,
मन ही मन करते बाते हैं।

ध्यान नही लगता था उसका कभी व्यर्थ बातो मे,
नही निकम्मी रहती, रखती काम सदा हाथो मे,
यो दिल को खोल दिखाते हैं।

आकृति में आकर्षरग नव, अमृत वर्षरग वारगी मे,
कोमलता थी सहज सौम्यता मेरी महारानी मे,
कहते-कहते रुक जाते हैं।

नही एक भी अवगुरग था जो कवि कहते नारी के,
उसके बिना आज जीवन के रग राग सब फीके,
किंचित् मन को ना भाते हैं।

† लय—मत बनो शराबी रे

* मां नभ से ऊंची क्यों ? यदि मां !—
रौरव से मुझे गिराना था
क्यों ये सुख के दिन दिखलाए—
यदि यह दुर्दिन दिखलाना था
हाथों से मार गिराना था
विषधर विष मुझे पिलाना था
लज्जा में ही मैं मर जाती
या करके नहीं जिलाना था।
क्यों गुत्थी को उलझाया है
जीवन को जटिल बनाया है।
माताजी ने कहलाया है।

गीतक छन्द

फिर गिरी हो मूर्च्छिता चैतन्य पा रोने लगी
आंसुओं से आर्द्र मानो मेदिनी होने लगी।
वन्य पशु भी आ गए अति खिन्न होकर म्लान से
सुन रहे बातें सभी अनिमेष पूरे ध्यान से।

† *रामजी हो ! रामजी ! श्री रामजी ! जीवन की प्राण बचाना हो !*
मेरा अन्तिम नम्र निवेदन इसे भूल मत जाना हो।

खैर किया सो किया आपने एक काम मत करना।
बड़े विषम इस मायक युग में फूंक-फूंक पग धरना।

ऐसे मानव जन्म गए जो पर-सुख दुर्बल होते।
स्वयं डूबते औरों की नैया मझधार डुबाते।

पल में तुड़वा डाली अपनी अप्रतिहत जो प्रीति।
अम्बुज उगा दिया अम्बर में कैसी हाय ! अनीति।

---

* लहराणी
† लय—राजना रमकड़ा

उस समय दिया कुछ ध्यान नही ,
उस समय किया कुछ ज्ञान नही ,
उस समय नही थे आप आप
हो सका अत अनुमान नही ।

हाथो से काम बिगाडा है ,
हाथो से धाम उजाडा है ,
सुखकारक सुमधुर फलदायक
हाथो से आम उखाडा है ।

कोई न दीखता है उपाय
अच्छा है मन को समझाना ,
जब समय हाथ से निकल गया
क्या अर्थ रखेगा पछताना ।

दोहा

जो होना था सो हुआ, भाई ! करो विचार ।
कैसे अपनी भूल का होगा अब प्रतिकार ।

† यह मेरे बस की बात नही ,
यह औरो के भी हाथ नही ,
अब पुन अयोध्या वे आए
होता ऐसा भी ज्ञात नही ।

यदि चलकर आप स्वय जाए ,
सारी स्थिति उनको समझाए ,
तो कुछ सम्भव लगता स्वामिन् !
आने को राजी हो जाए ।

[illegible]

उस समय दिया कुछ ध्यान नही ,
उस समय किया कुछ ज्ञान नही ,
उस समय नही थे आप आप
हो सका अत अनुमान नही ।

हाथो से काम बिगाडा है ,
हाथो से धाम उजाडा है ,
सुखकारक सुमधुर फलदायक
हाथो से आम उखाडा है ।

कोई न दीखता है उपाय
अच्छा है मन को समझाना ,
जब समय हाथ से निकल गया
क्या अर्थ रखेगा पछताना ।

दोहा

जो होना था सो हुआ, भाई ! करो विचार ।
कैसे अपनी भूल का होगा अब प्रतिकार ।

† यह मेरे बस की बात नही ,
यह औरो के भी हाथ नही ,
अब पुन अयोध्या वे आए
होता ऐसा भी ज्ञात नही ।

यदि चलकर आप स्वय जाए ,
सारी स्थिति उनको समझाए ,
तो कुछ सम्भव लगता स्वामिन् !
आने को राजी हो जाए ।

है अभी सुअवसर जाने का
ज्यों-त्यों कर उन्हें मनाने का
अपनत्व दिखा अपनाने का
उनका घर-बार बसाने का।
अब भी यदि लोगों का भय हो
तो भूल चूक कर मत जाना,
जब समय हाथ से निकल गया
क्या अर्थ रखेगा पछताना।

दोहा

तो क्या मैं जाऊं वहां ? हां ! जाओ महाराज !
रूठी रानी को मना लाने में क्या लाज ?

गीतक छन्द

बैठ पुष्पक यान में ले चमूपति को साथ में
सिंहनाद अरण्य पहुंचे बात की ही बात में।
यहां आकर रथ रुका था यहां मूर्छित हो गिरी
यहां स्थिरता से कहा सन्देश अपना आखिरी।

चरण चिन्ह कुछ दूर चले पर आगे वे भी मिले नहीं
कण्टक-विद्ध यहि शोणित-कण पड़े हुए थे कहीं-कहीं।
बोले राम यहां सीता बैठी हो ऐसा है लगता
ज्यों आसार दीखते त्यों-त्यों अधिक विरह ज्वाला जगता।

झलक रही थी स्पष्ट उदासी बालम के भी आनन में,
सीता ! सीता ! सीता ! करते राम घूमते वन-वन में।
जैसा नाम अरे ! वैसा ही तू कृतान्तमुख बना यहां
तू ही छोड़ गया था अबला मेरी सीता गई कहां ?

वह बोला क्यो और चढाते, हाय! राम! मेरे शिर पाप,
छाती पर पत्थर रख मैंने सहा दासता का अभिशाप।
सब कुछ देना देव! न देना पराधीनता जीवन मे,
सीता! सीता! सीता! करते राम घूमते वन-वन मे।

† वाढ स्वर रघुवर आवाजे दे रहे,
कहा गई रे! कहा गई वह जानकी।

हाय! किया मैंने कैसा अन्याय है
आगे-पीछे कुछ भी सोच सका नही,
अब सारे ही असफल हुए उपाय हैं
नही दीखती निकट-दूर सीता कही,
यो कह रो-रो दीर्घ सिसकिया ले रहे
सजा पा चुका मैं तेरे अपमान की।

शास्त्र, पिटक, श्रुति, स्मृति, साहित्य, पुराण मे
प्राय बतलाई नारी की दीनता,
पुरुष-पात्र कहला कर इस अभियान मे
कैसी यह दिखलाई मैंने हीनता,
यो गडरी प्रवाह मे जाते जो बहे
क्या आशा उन पुरुषो से उत्थान की।

* सिह-निनाद महारण्य का चप्पा-चप्पा छान लिया,
मिली कही भी नही मैथिली तब यह निश्चित मान लिया।
वह अब नही विश्व मे जीवित श्वापद चाट गया होगा,
निगल गया होगा अजगर या विषधर काट गया होगा।

---

† लय—प्रभुवर आवी वेला क्यारे आवशे

* रामायण

गीतक छन्द

मुंह अपना सा लिए वे आ गए साकेत में
हृदय की सब कामनाएं मिल चुकी थीं रेत में।
स्वजन-परिजन बन्धु-बान्धव दे रहे सब सान्त्वना
किन्तु रहने लगे राघव सब तरह से उन्मना।

लगते फीके सरस स्वादु पकवान भी
कुसुम सुकोमल शय्या तीखे तीर-सी।
नहीं सुहाते सुखकर मृदु परिधान भी
मलयानिल भी दुखद प्रलय समीर-सी।
शासन कार्यों में मन बहलाते रहे
स्मर विचित्रता विधि के अटल विधान की।

उत्तेजित हो उठी अति उद्वेग में
उन सब लोगों से आए सहसा लिया
मूर्खों ने था निष्कारण आवेग में
हा! मेरे ही घर पर यों हमला किया
स्वयं-स्वयं को फिर यों समझाते रहे
तुम्हारी भूल न हो घातक सम्मान की।

दोहा

माना आना भी रुका अन्तःपुर की ओर।
सीता विरहाघात ने दिया हृदय झकझोर।

गीतक छन्द

अब सभी वे रानियां कर रही पश्चाताप हैं
खाय रह रह खा रहा उनको उन्हीं का पाप है।

लय—प्रभुवर थारी सेवा स्यां रे पावचे

: ५ :

प्रतिशोध

गीतक छन्द

शरद ऋतु की सुखद शीतल पवन लहरी चल रही,
विगत घन, अति शुभ्र अम्बर पक विरहित थी मही।
आ रहा विस्तार वर्षा का सहज सक्षेप मे,
ज्यो समाहित तत्त्व सारे चतुर्विध निक्षेप मे।

नाति शीत, न चाति ऊष्मा, सम अवस्थित भाव मे,
सर्वदा ज्यो लीन रहते सन्त सहज स्वभाव मे।
निशा-वासर है बराबर तुल्यता कफ-वात मे,
वेदनी आयुर्यथा सम समुद्घात-विघात मे।

पूर्णत अनुकूल ऋतु यह स्वास्थ्य-शोधन के लिए,
ज्यो अणुव्रत आज जन-मानस-प्रबोधन के लिए।
स्वच्छ सलिल सरोवरो का मुकुर सदृश सुहावना,
धर्म-शुक्ल-ध्यान मे जैसे समुज्ज्वल भावना।

जैन-मुनि भी कर रहे अब प्रतीक्षा प्रस्थान की,
योग-रोधक प्राप्त-शैलेशी यथा निर्वाण की।
स्वल्प-सी भी वृष्टि होती, सिद्ध अत्युपयोगिनी,
सजग मुनि की क्रिया, सवर-निर्जरा सयोगिनी।

हो रही कृशकाय नदिया, क्षीण निर्झर पीनता,
क्षपक श्रेण्यारूढ मुनि की ज्यो कषाय-प्रहीणता।
वर्ष भर का कृषिक-श्रम अब हो रहा साकार है,
खीचता तन-सार अनशन मे यथा अनगार है।

गीतक छन्द

शरद ऋतु की सुखद शीतल पवन लहरी चल रही,
विगत घन, अति शुभ्र अम्बर पक विरहित थी मही।
आ रहा विस्तार वर्षा का सहज सक्षेप मे,
ज्यो समाहित तत्त्व सारे चतुर्विध निक्षेप मे।

नाति शीत, न चाति ऊष्मा, सम अवस्थित भाव मे,
सर्वदा ज्यो लीन रहते सन्त सहज स्वभाव मे।
निशा-वासर है बराबर तुल्यता कफ-बात मे,
वेदनी आयुर्यथा सम समुद्घात-विघात मे।

पूर्णत अनुकूल ऋतु यह स्वास्थ्य-शोधन के लिए,
ज्यो अणुव्रत आज जन-मानस-प्रबोधन के लिए।
स्वच्छ सलिल सरोवरो का मुकुर सदृश सुहावना,
धर्म-शुक्ल-ध्यान मे जैसे समुज्ज्वल भावना।

जैन-मुनि भी कर रहे अब प्रतीक्षा प्रस्थान की,
योग-रोधक प्राप्त-शैलेशी यथा निर्वाण की।
स्वल्प-सी भी वृष्टि होती, सिद्ध अत्युपयोगिनी,
सजग मुनि की क्रिया, सवर-निर्जरा सयोगिनी।

हो रही कृशकाय नदिया, क्षीण निर्झर पीनता,
क्षपक श्रेण्यारूढ मुनि की ज्यो कषाय-प्रहीणता।
वर्ष भर का कृषिक-श्रम अब हो रहा साकार है,
खीचता तन-सार अनशन मे यथा अनगार है।

दोहा

शारद शशधर तुल्य अब जिसी सती की कान्ति ।
भाव मिल रही कान्ति में परम हृदय को शान्ति ।

गीतक छन्द

युगल पुत्रों के प्रसव से प्रमुदिता सीता सती
पुण्डरीक-पुरी बनी ज्यों अवनि की अमरावती ।
शक्ति से भी अधिक नृप ने समुद जन्मोत्सव किए,
उल्लसित वातावरण में नाम लवणांकुश दिए ।

दोहा

ज्यों हिम ऋतु की यामिनी बढ़ते दोनों भ्रात ।
लगते लोचन युगल से माता को साक्षात ।

शोभित माँ की गोद में दोनों पुण्य निधान ।
होते ज्यों चारित्र में सम्यग् दर्शन-ज्ञान ।

शोभित माँ की गोद में दोनों पुण्य-निधान ।
ज्यों नभ में रवि-चन्द्रमा देते प्रभा महान ।

शोभित माँ की गोद में दोनों पुण्य-निधान ।
ऊर्ध्व लोक म ज्योति मय ज्यों सुधम-ईशान ।

तुलसी दोनी स्वामिन गति देती परमानन्द ।
निज गुण आत्मा में यथा पड़ते प्रतिबिम्ब ।

माता जागृत कर रही नैसर्गिक संस्कार ।
नव दीक्षित को ज्यों सुगुरु सिखलाते आचार ।

* माता संस्कार जगाती है,
जननी संस्कार जगाती है,
बन सहज शिक्षिका जीवन की
अपना कर्तव्य निभाती है,
जननी संस्कार जगाती है।

जो स्वयं सुसंस्कृत होती है,
जो परम परिष्कृत होती है,
अज्ञान पटल के अंचल से
जो पूर्ण अनावृत होती है।
क्षोणी-सी जिसमें है क्षमता,
सागर-सी जिसमें है समता,
नवनीत तुल्य अन्तर कोमल
माता-सी जिसमें है ममता।
आत्मीय अलौकिक प्रतिभा से
इंगित पर सब समझाती है।
जननी संस्कार जगाती है।

बच्चे का कैसे पालन हो,
कैसे जीवन संचालन हो,
हो खाद्य-पेय कैसे नियमित,
कैसे अन्तर प्रक्षालन हो,
क्यों कम बेसी हंसता-रोता,
क्यों कम बेसी जगता-सोता,
उसकी गतिविधियों का पूरा
अनुमान उसी को है होता।
वह सरल मनोवैज्ञानिक बन
सारी उलझन सुलझाती है।
जननी संस्कार जगाती है।

* सहनाणी

होता है बालक सरस हृदय
धरता जाता अभिनव अभिनय
निर्भय हो माँ के आगे ही
रखता रहता मन के संशय
गृह-कार्य निरत सुन लेती है
धीरज से उत्तर देती है
मन रोष न करती सोच समझ—
यह पकने वाली खेती है।

एकेक बात को सौ-सौ बार
बतलाती नहीं अघाती है।
जननी संस्कार जगाती है।

रखती अनुशासन से शासित
स्वमना पर करती है भाषित
वात्सल्य दिखाती बार-बार
सद्गुण सौरभ से कर वासित
नैतिक आध्यात्मिक दीक्षाएं
देती कर विविध समीक्षाएं
लेती रहती है समय-समय
कण्ठस्थित तत्त्व परीक्षाएं।

नय विनय विवेक, धर्म-मित भाषण
शिष्टाचार सिखाती है।
जननी संस्कार जगाती है।

संस्कारी माता-पिता के नन्दन भी होते संस्कारी
सद् आचारी माता पिता के सन्तान सदाचारी।
मिट्टी जैसा घड़ा पुत्र भी प्राय: मातृ-पितृ अनुरूप
राम और सीता के पुत्र युगल अवलोकनीय हैं सद्रूप।

प्रात उठते ही करते है महामन्त्र का स्मरण सदा,
नित्य नियम कर दोनो छूते पूज्य जनो के चरण सदा।
नियत समय पर खेलकूद हैं, नियत समय पर विद्याभ्यास,
नियत समय पर खाना-सोना, करते सर्वांगीण विकास।

सोरठा

सिद्धपुरुष सिद्धार्थ, गुणी विशिष्ट अणुव्रती।
गुण अनुरूप यथार्थ, नामकरण निर्मल चरण।

वर निमित्त अष्टाग, शास्त्र-शस्त्र-विद्या-निपुण।
मज्जन सागोपाग, आगम-अम्बुधि मे किया।

देव-सुगुरु-सद्धर्म, सुधामयी रत्नत्रयी।
सुविहित अन्तर मर्म, मान रहा जीवन जडी।

गीतक छन्द

अनासक्त, विरक्त जीवन, बना वानप्रस्थ-सा,
साधना मे रत निरन्तर, हो रहा आत्मस्थ-सा।
तपस्वी, भिक्षोपजीवी, अकिंचन, अपरिग्रही,
सदन आया, सती सादर असन उसको दे रही।

* बाई तू है कौन ? विरहिणी सी क्यो ऐसे रहती है ?
आकृति तेरी बतलाती, तू अन्तर पीडा सहती है।

लगता ऐसा तू है पुत्री ! रानी बडे घराने की,
साधर्मिक भाई से बाई ! क्या है बात छिपाने की,
क्यो अविरल आखो से यो, आसू की धारा बहती है।
आकृति तेरी बतलाती, तू अन्तर पीडा सहती है।

सारी स्मृतिया जाग उठी, कोशला सामने दीख पडी,
महा भयावह सिंहनाद के स्मरण मात्र से चीख पडी,

---

* लय—बाजरे री रोटी पोई

होता है बालक सरल हृदय
करता जाता अभिनव अभिनय
निर्भय हो मां के आगे ही
रखता रहता मन के संशय
गृह-कार्य निरत सुन सती है
धीरज से उत्तर देती है,
मन रोष न करती सोच समझ—
यह बचपने मानी लेती है।

एकेक बात को सौ-सौ बार
बतलाती नहीं अघाती है।
जननी संस्कार जगाती है।

रखती अनुशासन से शासित,
स्नेहसना पर करती है भाषित
वात्सल्य दिखाती बार-बार
सद्गुण सौरभ से कर वासित
नैतिक आध्यात्मिक शिक्षाएं
देती कर विविध समीक्षाएं
लेती रहती है समय-समय
अवस्थित तथ्य परीक्षाएं।

नय विनय विवेक, सत्य मित भाषण
शिष्टाचार सिखाती है।
जननी संस्कार जगाती है।

संस्कारी माता-पिता के बालक भी होते संस्कारी
सद् आचारी माता पिता के बालक सदा सदाचारी।
मिट्टी जैसा घड़ा पुत्र भी प्राय मातृ-पितृ अनुरूप
राम और सीता के पुत्र युगल [illegible] है [illegible]।

दोहा

सुन प्रमुदित सीता* हुई, सौप दिए सोल्लास।
सिद्धपुरुष करवा रहा सत्वर विद्याभ्यास।

* शिक्षक सिद्धार्थ पढाता है,
अध्यापक स्वय पढाता है,
सन्तोषी, सभ्य, सदाचारी
सारे शास्त्रो का ज्ञाता है।
अध्यापक स्वय पढाता है।

वाणी के पहले हो जिसका
व्यवहार स्वय जो बोल उठे,
पुस्तक के पहले ही जिसका
आचार स्वय जो बोल उठे,
कार्यो के पहले ही जिसके
सस्कार स्वय जो बोल उठे,
जिसके सक्षेपी शब्दो मे
विस्तार स्वय जो बोल उठे,
उससे बढकर फिर कौन कहो!
बच्चो का भाग्य विधाता है।
अध्यापक स्वय पढाता है।

जिसने अनुशासन मे रहकर
अनुशासन करना सीखा है,
जिसने मित भाषण मे रहकर
मित भाषण करना सीखा है,
जिसने पथ-दर्शन मे रहकर
पथ-दर्शन करना सीखा है,

---

* सहनाणी

जान पूर्ण विश्वासी अपनी करुण कहानी कहती है।
आकृति तेरी बतलाती तू अन्तर पीड़ा सहती है।

सगी बहिन से बढ़कर रखता प्रजबंध नृप मुझे यहाँ
सब कुछ है तो भी पर-घर है कहो चित्त में चैन कहाँ ?
क्या मतलाऊं यह चिन्ता मन चिता निरन्तर दहती है।
आकृति तेरी बतलाती तू अन्तर पीड़ा सहती है।

* इतने में नन्दन आते।

आते ही सादर सिद्ध-पुरुष को सविनय शीश झुकाते।

खिला चान्द सा मोहक मुखड़ा मधुर-मधुर मुस्काते।
अद्भुत प्रभा विशाल भाल पर मोचन हृदय लुभाते।

अनुपम आकर्षण आकृति का स्तब्ध सिद्ध रह जाते।
ऐसे पुत्र रत्न पा मां क्यों ? काटे दुःख की रातें।

राम और लक्ष्मण का भी ये भ्राता युगल भुलाते।
क्या उज्ज्वल भविष्य है इनके चेहरे ही बतलाते।

सुन-सुन मैं तो मुग्ध हो गया इनकी मार्मिक बातें।
सहज चपलता में ही कितने छुपे रहस्य दिखलाते ?

दोहा

सीता तू सौभागिनी ऐसे पुत्र समर्थ।
क्यों करती भोली अरे ! इतनी चिन्ता व्यर्थ।

† भाई ! सब कुछ ठीक किन्तु कोई न पढ़ाने वाला है
जीवन के उन्नति पथ पर कोई न बढ़ाने वाला है।
लेता हूं दायित्व स्वयं मैं कर मत इनका तनिक विचार
मेरी विद्याओं के सब पात्र मिले मन के अनुसार।

---

* लय—हम बह आदर्श दिखाएं

† रामायण

दोहा

सुन प्रमुदित सीता हुई, सौप दिए सौल्लास।
सिद्धपुरुष करवा रहा सत्वर विद्याभ्यास।

* शिक्षक सिद्धार्थ पढाता है,
अध्यापक स्वय पढाता है,
सन्तोषी, सभ्य, सदाचारी
सारे शास्त्रो का ज्ञाता है।
अध्यापक स्वय पढाता है।

वाणी के पहले ही जिसका
व्यवहार स्वय जो बोल उठे,
पुस्तक के पहले ही जिसका
आचार स्वय जो बोल उठे,
कार्यों के पहले ही जिसके
सस्कार स्वय जो बोल उठे,
जिसके सक्षेपी शब्दो मे
विस्तार स्वय जो बोल उठे,
उससे बढकर फिर कौन कहो!
बच्चो का भाग्य विधाता है।
अध्यापक स्वय पढाता है।

जिसने अनुशासन मे रहकर
अनुशासन करना सीखा है,
जिसने मित भाषण मे रहकर
मित भाषण करना सीखा है,
जिसने पथ-दर्शन मे रहकर
पथ-दर्शन करना सीखा है,

* सहनाणी

आन पूर्ण विश्वासी अपनी करुण कहानी कहती है।
आकृति तेरी बतलाती, तू अन्तर पीड़ा सहती है।

सगी बहिन से बढ़कर रखता वज्रजंघ नृप मुझे यहाँ
सब कुछ है तो भी पर-घर है कहो चित्त में चैन कहाँ ?
क्या बतलाऊं यह चिन्ता अब चिता निरन्तर दहती है।
आकृति तेरी बतलाती तू अन्तर पीड़ा सहती है।

* इतने में नन्दन आते।
आते ही सादर सिद्ध-पुरुष को सविनय शीस झुकाते।

खिला चान्द सा मोहक मुखड़ा मधुर-मधुर मुस्काते।
अद्भुत प्रभा विशाल भाल पर लोचन हृदय लुभाते।

अनुपम आकर्षण आकृति का स्तब्ध सिद्ध रह जाते।
ऐसे पुत्र रत्न पा मां क्यों ? काटे दुःख की रातें।

राम और लक्ष्मण को भी ये भ्राता युगल भुलाते।
क्या उज्ज्वल भविष्य है इनके चेहरे ही बतलाते।

सुन-सुन मैं तो मुग्ध हो गया इनकी मार्मिक बातें।
सहज चपलता में ही कितने छुपे रहस्य दिखलाते ?

दोहा

सीता तू सौभागिनी ऐसे पुत्र समर्थ।
क्यों करती मौसी अरे ! इतनी चिन्ता व्यर्थ।

† भाई ! सब कुछ ठीक किन्तु कोई न पढ़ाने वाला है
जीवन के उन्नति पथ पर, कोई न बढ़ाने वाला है।
लेता हूँ दायित्व स्वयं मैं कर मत इनका तनिक विचार
मेरी विद्याओं के सच्चे पात्र मिले मन के अनुसार।

---

* लय—हम वह आदर्श दिखाएं

† रामायण

दोहा

सुन प्रमुदित सीता हुई, सौंप दिए सोल्लास।
सिद्धपुरुष करवा रहा सत्वर विद्याभ्यास।

* शिक्षक सिद्धार्थ पढाता है,
अध्यापक स्वय पढाता है,
सन्तोषी, सभ्य, सदाचारी
सारे शास्त्रो का ज्ञाता है।
अध्यापक स्वय पढाता है।

वाणी के पहले ही जिसका
व्यवहार स्वय जो बोल उठे,
पुस्तक के पहले ही जिसका
आचार स्वय जो बोल उठे,
कार्यों के पहले ही जिसके
सस्कार स्वय जो बोल उठे,
जिसके सक्षेपी शब्दो मे
विस्तार स्वय जो बोल उठे,
उससे बढकर फिर कौन कहो !
बच्चो का भाग्य विधाता है।
अध्यापक स्वय पढाता है।

जिसने अनुशासन मे रहकर
अनुशासन करना सीखा है,
जिसने मित भाषण मे रहकर
मित भाषण करना सीखा है,
जिसने पथ-दर्शन मे रहकर
पथ-दर्शन करना सीखा है,

* सहनाणी

जिसमें सु विमर्षण में रहकर
सु विमर्षण करना सीखा है,
जीवन-नैया का निर्यामक
सुन्दर भविष्य बनाता है।
अध्यापक स्वयं पढ़ाता है।

विद्या क्रय-विक्रय का साधन
जो कभी न भासा करता है
शिक्षण में भी विद्यार्थी की
अभिरुचि को जाना करता है
निष्पक्ष दक्षता से कर्तव्य—
सदा पहचाना करता है
प्रामाणिकता नियमितता से
सुज्ञान खजाना भरता है।
भर बूंद-बूंद से घड़ा बड़ा—
यह देश-राष्ट्र निर्माता है।
अध्यापक स्वयं पढ़ाता है।

विद्यार्थी पढ़ते जाते हैं
सद्गुणकण पढ़ते जाते हैं
अपने इन सहज गुणों से ही
वे आगे बढ़ते जाते हैं।
विद्यार्थी पढ़ते जाते हैं।

जो विनयी विज्ञ विचक्षण हैं
नैसर्गिक प्रभा विलक्षण है
कण-कण में जिनके जिज्ञासा
जीवन सर्वांग सुलक्षण है
गुरु इंगित पर जो चलते हैं
गुरु इंगित पर जो चलते हैं

अपना औचित्य निभाने मे भी
कभी नही जो टलते है ।
पल-पल को सफल वनाकर प्रगति
शिखर पर चढते जाते हैं ।
विद्यार्थी पढते जाते हैं ।

सोत्सुक गुरुकुल मे रहते हैं,
तप, योग यथाविधि सहते है,
सहते अनुशासन मृदु-कठोर
प्रिय करते हैं, प्रिय कहते है,
सात्विक, तात्त्विक, स्वल्पाहारी,
अकुतोभय, अटल ब्रह्मचारी,
श्रम-निष्ठ, शिष्ट गुण मे विशिष्ट
व्यवहार कुशल आज्ञाकारी,
जीवन काचन मे सद्विद्या
मुक्ता-मणि मढते जाते हैं ।
विद्यार्थी पढते जाते हैं ।

दोहा

स्व-क्षयोपशम था प्रवल, सिद्धपुरुष सयोग ।
सत्वर विद्याभ्यास का सफल हुआ उद्योग ।

विद्यादान-प्रदान से उभय पक्ष कृतकृत्य ।
मातृ-चरण मे आ गिरे, सिद्ध चरण आहृत्य ।

* नैतिक, सामाजिक, अर्थ-शास्त्र,
शासन-विधि का अध्ययन किया,
हो कूट-नीति के विशेषज्ञ
आध्यात्मिक शिक्षण-चयन किया,

* सहनाणी

जिसने सु विमर्षण में रहकर
सु-विमर्षण करना सीखा है
जीवन-नैया का निर्यामक
सुन्दर भविष्य संभाता है।
अध्यापक स्वयं पढ़ाता है।

विद्या क्रय-विक्रय का साधन
जो कभी न माना करता है
शिक्षण में भी विद्यार्थी की
अभिरुचि को आंका करता है
निष्पक्ष दक्षता से कर्तव्य—
सदा पहचाना करता है
प्रामाणिकता नियमितता से
अज्ञान भगाया करता है।
भर बूंद-बूंद से घड़ा बड़ा—
यह देश राष्ट्र निर्माता है।
अध्यापक स्वयं पढ़ाता है।

विद्यार्थी पढ़ते जाते हैं
सवणांकघ पढ़ते जाते हैं
अपने इन सहज गुणों से ही
वे आगे बढ़ते जाते हैं।
विद्यार्थी पढ़ते जाते हैं।

जो विनयी विज्ञ विचक्षण हैं
नैसर्गिक प्रभा विलक्षण है
कण-कण में जिनके जिज्ञासा
जीवन सर्वांग सुलक्षण है
गुरु इंगित पर जो चलन है
गुरु इंगित पर जो चलन है

मैंने जब अपनी कन्या दी तो क्यो करते आप विचार ,
पडी म्यान को रहने दो यदि आ क सको आको तलवार ।
तुम जिससे चाहो अपनी पुत्री का कर सकते सम्बन्ध ,
किन्तु सुता को मैं न कूप मे डालूगा कर आखे बन्ध ।

तुम क्या दोगे नही ? तुम्हारी छाया को देना होगा ,
अगर नही दोगे तो काया-माया को देना होगा ।
अभी स्नेह से समझाते हैं, वरना चढकर आएगे ,
माथे पर रख पाव तुम्हारी कन्या को ले जाएगे ।

दोहा

वातो-वातो मे छिडा सहज सहेतुक युद्ध ।
उभय पक्ष के भट भिडे रण-रेखा पर क्रुद्ध ।

गीतक छन्द

पृथु-प्रबल-बल सामने दल वज्र का हटने लगा ,
उदय से ज्यो मोह के चारित्र-बल घटने लगा ।
पुनः दोनो ओर से होने लगी तैयारियां ,
सन्नद्ध योद्धा बढ रहे करते हुए किलकारिया ।

† पूछते लवणाकुश भाई ,
मामाजी ! यह आज बज रही क्यो सहनाई ।

तप्त हेम से आप सभी के वदन हो रहे लाल ,
भृकुटी-भग से लगता मानो कुपित हुआ है काल ,
अजब आखो मे अरुणाई ।

कमर कसी तलवार हाथ मे भाला, बरछी तीर ,
पहने कवच, तान सीने को चलते बाके-वीर ,
देखते अपनी परछाई ।

† लय—नावडा धीमो पहज्या रे

सीखी धर धनुर्वाण विद्या
अस्त्रों की प्रमुख-ज्ञान कला
कविता संगीत चित्र-दर्शन
साहित्य मनोविज्ञान कला।

सब विद्याओं में पारंगत
मातुल के सम्मुख आते हैं
लावण्य वदन पर निखर रहा
अपना कौशल दिखलाते हैं
यों देख शौर्य गांभीर्य धैर्य नृप—
का मन हर्ष विभोर हुआ
अरुणाई तरुणाई विलोक—
अन्तर विस्मय कुछ और हुआ।

दोहा

अब वृद्धा ये अर नहीं अधिक टिकेंगे देर।
दोनों के उद्वाह में उचित नहीं है देर।

यों विचार अपनी सुता रूपकला सम्पन्न।
सोत्सव लवणकुमार को ब्याही परम प्रसन्न।

किया सुदृढ़ पारस्परिक अविच्छिन्न सम्बन्ध।
सीता को भी पा स्नुषा मिला परम आनन्द।

अंकुश का परिणय तय करने पृथ्वीपुर भेजा संवाद
पृथुनृप से कहलाया कनकमाला पुत्री दो साह्लाद।
बोला पृथु उस भागिनेय के कुल को बिना जान-पहचान
बतलाओ! मैं ऐसे कैसे कर सकता हूं कन्या-दान।

रामायण

मैंने जब अपनी कन्या दी तो क्यो करते आप विचार ,
पडी म्यान को रहने दो यदि आक सको आको तलवार ।
तुम जिससे चाहो अपनी पुत्री का कर सकते सम्बन्ध ,
किन्तु सुता को मैं न कूप मे डालूगा कर आखे बन्ध ।

तुम क्या दोगे नही ? तुम्हारी छाया को देना होगा ,
अगर नही दोगे तो काया-माया को देना होगा ।
अभी स्नेह से समझाते हैं, वरना चढकर आएगे ,
माथे पर रख पाव तुम्हारी कन्या को ले जाएगे ।

दोहा

वातो-वातो मे छिडा सहज सहेतुक युद्ध ।
उभय पक्ष के भट भिडे रण-रेखा पर क्रुद्ध ।

गीतक छन्द

पृथु-प्रबल-बल सामने दल वज्र का हटने लगा ,
उदय से ज्यो मोह के चारित्र-बल घटने लगा ।
पुन. दोनो ओर से होने लगी तैयारिया ,
सन्नद्ध योद्धा बढ रहे करते हुए किलकारिया ।

† पूछते लवणाकुश भाई ,
मामाजी ! यह आज बज रही क्यो सहनाई ।

तप्त हेम से आप सभी के वदन हो रहे लाल ,
भृकुटी-भग से लगता मानो कुपित हुआ है काल ,
अजब आखो मे अरुणाई ।

कमर कसी तलवार हाथ मे भाला, बरछी तीर ,
पहने कवच, तान सीने को चलते बाके-वीर ,
देखते अपनी परछाई ।

---

† लय—नावडा धीमो पडज्या रे

आज आ रहे पुत्रों ! पृथ्वीपुर करने संग्राम
आए बिन लड़ते रहना हम राजाओं का काम
वीरता आकृति में छाई।
आज सुपुत्रों ! बजती है यह रण की शहनाई
चढ़ाई करते हैं भाई !
चढ़ाई करते हैं भाई !

क्या कारण आकस्मिक रण का क्या है विषम विवाद ?
क्या कोई सीमा का विग्रह जो करते प्रतिवाद
ध्यान में बात न कुछ आई।

मांगी कंचनबाला करने अंकुश का उद्वाह
पर उस अभिमानी ने मेरी की न जरा परवाह
राह साहस की अपनाई।

तब तो मामाजी ! जाएंगे हम अवश्य ही साथ
बल पूछने वालों को दिखलाएंगे दो हाथ
मिटा देंगे सब अकड़ाई।
समझ गए यों आज बजी है रण की शहनाई
कह रहे लवणांकुश भाई।

* कब पीछे रहने वाले थे,
वे कब यों सहने वाले थे
चल पड़े सज्ज शस्त्रास्त्रों से
वे निर्भय बहने वाले थे
जाते ही दोनों पक्षों में
जब प्रथम प्रथम सम्मिलन हुआ
प कौन रोष यों बातों ही—
बातों में आक्रमण हुआ।

---

*तरनागी

म्यानो से निकली तलवारे
खरतर बाणो की बौछारे,
पवि नृप के सुभट न ठहर सके
लगता अब हारे, अब हारे,
यो देख स्वपक्ष पराजय वे—
भट उभय वीर ललकार उठे,
मानो सुषुप्त मृगपति जागे,
काले फणधर फुफकार उठे।

सुनकर टकारे चापो की
टिक सके विपक्षी वीर नही,
कैवल्य युगल के आगे क्या ?
रह सकते घातिक कर्म कही ?
अवलोक पलायन सेना का
पृथु प्राण बचाने को भागे,
कोसो तक दूर खदेड दिया
वे थे पीछे, वे थे आगे।

दोहा

ऐसे कैसे भग रहे ओ क्षत्रिय अवतश।
ठहरो अब बतला रहे तुम्हे हमारा वश।

* जान लिया जी ! जान लिया,
वश आपका जान लिया।
पहचान लिया पहचान लिया
वश-अश पहचान लिया।

देख लिया पौरुष प्रत्यक्ष,
टिक पाऊगा मैं न समक्ष,

* लय—जावण द्यो रे भाई ! जावण द्यो

कन्या देना मान लिया।
जान लिया जी ! जान लिया।

कन्या बिना जान-पहचान
किसे दे रहे हो श्रीमान् ?
किस बल पर अभिमान किया।
ऐसे कैसे जान लिया ?

जो होता पहिले ही ज्ञात
कभी नहीं बढ़ती यह बात
नहीं सही अनुमान किया।
जान लिया जी ! जान लिया।

ऐसा करने से अस्थान
क्या नहीं पाओगे त्राण
क्यों पहिले अपमान किया ?
ऐसे कैसे जान लिया ?

दोहा

यों कहकर कोदण्ड पर ज्योंही साधा बाण।
थर-थर-थर थर कांपने लगे भूप के प्राण।

भो! वज्रजंघजी! आकर इन वीरों को समझाइए।
भो! वज्रजंघजी! सादर सोत्सव कन्या को ले आइए।

मैं हारा तुम जीते बाबा! अब तो इन्हें मनाओ।
मेरी भूलें भूल कृपा कर अपना मुझे बनाओ।

मैंने तो इनको समझा था वपु-बल-वय से कच्चे।
पर गुदड़ी में गोरख निकले शेर बबर्री सच्चे।

लय—म्हारी रच सेलड़िया

मामाजी यो भानेजो को धीरज से समझाते।
नही क्षमाप्रार्थी पर वीरो! क्षत्रिय बाण चलाते।
ए वीर कुमारो! अब इस रण से उपरत हो जाइए।
रणधीर कुमारो! शरणागत की अब शान बचाइए।

ये अपने घनिष्ट सम्बन्धी श्वसुर बने अवरज के।
मिलो-जुलो, सस्नेह ले चलो, अब बरात सजधज के।

* पल भर मे ही वीर-रौद्र रस बदल गया हर्षोत्सव मे,
शीघ्र उग्र प्रतिशोध-भावना परिवर्तित प्रेमोद्भव मे।
क्षण भर पहले जो लडते थे वे आपस मे गले मिले,
पलट गया पासा ही सारा फूल और के और खिले।

† अचानक रग नया लाए,
बडा रहस्योद्घाटन करने नारदजी आए।

मची एक अभिनव हलचल-सी विस्मित-से सारे,
झुके सहज ऋषिवर चरणो मे सब डर के मारे,
उच्च आसन पर सरसाए।

जगल मे मगल यह कैसा? कैसी तैयारी?
भाव-विभोर हो रहे भूले सुध-बुध-सी सारी,
हर्ष-घन उमड-घुमड छाए।

बोला पृथु कचनमाला है सुकुमाला बाला,
देवर्षे! अकुश को पहनाएगी वरमाला,
अत मगल जाते गाए।

---

* रामायण

† लय—तावडा धीमो पडज्या रे

'दाई' आगे पेट छुपाना अरे ! कहाँ सीखे ?
दिखा रहे आनन्द तुम्हारे ये चेहरे फीके,
हृदय घबराए-घबराए ।

अरे ! वंश क्या है अकुल का यह तो बतलाओ ?
किसे दे रहे कन्या-धन्या यह तो समझाओ ?
ध्यान में मेरे आ जाए ।

सविनय पृथु ने कहा ऋषीश्वर ! मैं इनसे हारा
अत बाध्य हो देता पुत्री नहीं और चारा
आप ही कृपया बतलाए ।

दोहा

लवणांकुश भी हो रहे सुनने को सोत्कण्ठ ।
आकर वे बैठे उभय चुपके ऋषि उत्कण्ठ ।

बताऊं मैं क्या इनका वंश
क्या अब तक पहचान न पाए सूर्य-वंश अवतंस ।
बताऊं मैं क्या इनका वंश ।

युग निर्माता प्रभु आदीश्वर
प्रथम चक्रवर्ती भरतेश्वर
इस कुल के नभ-हंस ।
बताऊं मैं क्या इनका वंश ।

कितने क्षम वीर हुए हैं
जिन विवेकी धीर हुए हैं
त्यागी विगताशंस ।
बताऊं मैं क्या इनका वंश ।

हमारा प्यारा राजस्थान

रघु-दिलीप-अज से उन्नायक ,
नृप दशरथ से भाग्य-विधायक ,
योद्धा-प्राप्त प्रशस ।
बताऊ मै क्या इनका वश ।

प्रबल प्रतापी राघव-लक्ष्मण ,
जान रहा जगती का कण-कण ,
(किया) दशकधर का ध्वश
बताऊ मैं क्या इनका वश ।

राम और सीता के नन्दन ,
ये दोनो रघुकुल के चन्दन ,
हैं असली के अश ।
बताऊ मैं क्या इनका वश ।

दोहा

हो सस्मित विस्मित पृथु पूछ रहा साश्चर्य !
ये कैसे आए यहा ? बतलाए तात्पर्य ?

* सीता को छोड दिया वन मे ,
सीता को छोड दिया वन मे ।
यह राम-राज्य की अजब नीति ,
श्री लक्ष्मण के अनुशासन मे ।

जब गर्भवती थी महासती
शर पर अभियोग बडा आया ,
लका-प्रवास का ले निमित्त
अबला को दोषी ठहराया ,

* सहनाणी

भारी जनमत का ओर चला
मानो सिंहासन डोल गया
अपयश से डरकर रघुवर ने
अपनाया ऐसा पथ नया।
पहिली घटना यह निन्दास्पद
हा ! घटी राम के जीवन में।
सीता को छोड़ दिया वन में।

राघव ने तो पाटी-पोती
कुछ करने में रक्खी न कमी
पर था सतीत्व का बल अटूट
तेजस्वी पुत्र थे पराक्रमी
नृप अश्वमेध का योग मिला
संकट में शुभ सहयोग मिला
भावी का चक्र चला ऐसा
यह अनहोना संयोग मिला।
तेरी पुत्री सौभाग्यवती
तू सोच न कर किंचित मन में।
सीता को छोड़ दिया वन में।

सुन तमक उठे हैं समरांगण
अंकुश यह अंकुश सह न सका
इस हृदय द्रावक घटना के
प्रति वह मौनी रह न सका
माता को ऐसा कष्ट दिया
क्या काम राम ने हाय ! किया
अन्याय किया अन्याय किया
यह महाघोर अन्याय किया।

है कहा अयोध्या ? कहा राम ?
लग गई आग सारे तन मे ।
माता को छोड दिया वन मे ।

जिस मा का हमने दूध पिया
उसका अपमान न देखेंगे,
चम-चमती इन तलवारो से
हम जा करके बदला लेंगे,
रे ! दूर कौनसा कौशल है
वीरत्व स्वय का तुम तोलो,
यदि थोडी सी भी क्षमता है
करके दिखलाओ कम बोलो ।
'कलिकारक' सुलगा चिनगारी
हो गए लीन नभ प्रागण मे ।
सीता को छोड दिया वन मे ।

दोहा

आतुरता उद्विग्नता बढी उभय के अग ।
शीघ्र अयोध्या-गमन का छेडा गया प्रसग ।

वज्रजघ दे सान्त्वना करते हैं आश्वस्त ।
तत्क्षण वैवाहिक विधि की सम्पन्न समस्त ।

गीतक छन्द

चले अब दिग्-विजय करने वज्र-पृथु नृप साथ में,
मार्गवर्ती देश जीते बात की ही बात मे ।
सुर-तटी-तट जीतकर आगे चले कैलाश से,
उत्तरी दल जीतते बढते रहे उल्लास से ।

सिन्धु-तट के निकट साधे प्रान्त सब आराम से
युद्ध अब लगने लगे हैं उन्हें भुज-व्यायाम से।
कर सफल दिग्-विजय-यात्रा सबल दल-बल ठाठ से
आ गिरे माँ के चरण में युगल नव सम्राट से।

देख पुत्रों की सुशोभा अति प्रफुल्लित जानकी
हो रही साकार स्मृति अपराजिता वरदान की।
मैं सुपुष्पा हूं अनन्या खिला भाल विशाल है
सास के सा एक मेरे युगल विजयी लाल हैं।

चतुष्पदी

चरण प्रणत पुत्रों को माता
कहती युग जीओ युग त्राता।
सिद्ध कामनाएं हों सारी
आशी अक्षय रहो तुम्हारी।

फूल रही गौरव से छाती
सजल लोचनों से नहलाती।
देती बार-बार आशीषें
झूम रहीं अम्बर मन-टीसें।

अश्वजय न किया इशारा
हो अब शीघ्र प्रयाण हमारा।
यह अवसर कौशल जान का
प्रथम पराक्रम दिखलाने का।

सहज जुड़ी है सेना भारी
फिर करनी होगी तैयारी।
तत्क्षण गूंजी रण-शहनाई
चमन उमग दोनों भाई।

दोहा

घर आए चिरकाल से करके विजय महान् ।
आते ही करने लगे, अरे ! किधर प्रस्थान ।

* अयोध्या हम जाएगे
मातुश्री का यह अपमान न सह पाएगे ।

इतने दिन कुछ भेद न पाया,
नारद मुनि ने हमे जगाया,
पूज्य पिताजी को अब पौरुष दिखलाएगे ।

† यो सुन सीता सती हुई दिलगीर,
लोचन धारा बहने लगी ।
हो मेरे लाल !
उनकी बाते गई कलेजा चीर,
गद्गद् स्वर से कहने लगी ।
हो मेरे लाल !

रे ! रे ! पुत्रो ! यह क्या करते काम
क्या उन्हे नहीं पहचानते ?
मेरी आशा के तुम ही विश्राम,
क्यो यह झूठा हठ ठानते ।

* हमने उनको जान लिया है,
सही रूप पहचान लिया है,
क्या हम कम है मा ! जो उनसे घबराएगे ।

बने वे क्रूर भाव न मोडा,
हाय ! तुम्हे वन मे जा छोडा,
क्या हम आखे मूद, देखते रह जाएगे ?

* लय—राग री रेंम पिछाणो
† लय—वधज्यो रे ! चेजारा थारी वेल

* जो कुछ किया उन्होंने उसको भूल
समझो ! अपने कर्तव्य को।
उनके पीछे तुम न बनो प्रतिकूल
जाओ अपने गन्तव्य को।

यहाँ बड़ों से अड़ना अपना धर्म
मेरा यह मनन यथेष्ठ है।
छोड़ो तुम यह साहस का उपकर्म
मिलना ही सर्व श्रेष्ठ है।

† कटुता का प्रतिफल है कटुता
राजनीति की है यह पटुता
उनके कामों को बैखी से सलझाएंगे।
जाते हम कर्तव्य निभाने
जैसे को तैसा समझाने
यही सही मन्तव्य इसी को अपनाए गे।

नये खून का नया अभी तक जोश
कुछ होश सम्भालो स्थैर्य से।
देखा नहीं राम-लक्ष्मण का रोष,
खामोश काम लो धैर्य से।

† धीरज की भी हद होती है
अति धीरज स्वत्व खोती है
पतिता कलंकिता के पुत्र न कहलाएंगे।
नहीं रुकेंगे नहीं रुकेंगे
तलवारों के साथ झुकेंगे,
माता का सम्मान बढ़ाकर ही आएँगे।
अयोध्या हम जाएंगे।

लय—बड़भागी रे ! बैराग धारी बैन
† लय—राम रो रस पियाणो

: ६ :

मिलन

* जो कुछ किया उन्होंने उसको भूल
समझो ! अपने कर्तव्य को।
उनके पीछे तुम न बनो प्रतिकूल
जाओ अपने गन्तव्य को।

नहीं यहाँ से अड़ना अपना धर्म
मेरा यह मनन यथेष्ठ है।
छोड़ो तुम यह आहव का उपक्रम
मिलना ही सर्व श्रेष्ठ है।

† कटुता का प्रतिफल है कटुता,
राजनीति की है यह पटुता,
उलझे बातों को मैत्री से सुलझाएंगे।

जाते हम कर्तव्य निभाने
जैसे को तैसा समझाने
यही सही मन्तव्य इसी को अपनाएंगे।

नये खून का गया अभी तक जोश
कुछ होश सम्भालो स्थर्य से।
देखा नहीं राम-लक्ष्मण का रोष,
खामोश काम लो धैर्य से।

† धीरज की भी हद होती है
अति धीरज स्वत्व खोती है
पतिता कलंकिता के पुत्र न कहलाएंगे।

नहीं रुकेंगे नहीं रुकेंगे
तलवारों के साथ भुकेंगे,
माता का सम्मान बढ़ाकर ही आएंगे।
अयोध्या हम जाएंगे।

---

* लय—बढ़ज्यो रे ! वेजारा आगे बेल
† लय—पग री रेख पिछाणो

* रणभेरी गूंजी अम्बर मे,
आकस्मिक आहव की चर्चा
साकेत नगर के घर-घर मे।
रणभेरी गूंजी अम्बर मे।

सेना का स्कन्धावार जमा
है रचे रचाये विविध व्यूह,
शस्त्रास्त्रो से सब सज्ज-सज्ज
है अडे खडे सैनिक समूह,
भू काप रही पाद-ध्वनि से
नभ बधिर हो रहा नारो से,
फुकारो से हुकारो से
ललकारो से टकारो से,
आखे अगारे बरसाती
है आग धधकती अन्तर मे।
रणभेरी गूंजी अम्बर मे।

मूछो पर ताव चढाते है
आपस मे जोश जगाते है,
जय तूर बजा, नक्कारो पर
डके की चोट लगाते है,
रे! अवध नरेश्वर कानो मे
क्या तैल डाल कर सोए है,

---

* सहनाणी

यह कैसे है डरपोक लोग
कुछ नही समझ मे आता है,
थोडी-सी खडवड सुनते ही
इनका मन घबरा जाता है,
आक्रमण अयोध्या पर कर दे
क्या कोई खेल तमाशा है,
यह कठिन कल्पना भी करना
थोथी-सी स्वप्निल आशा है।
आया है पथ-भूला कोई
यो कहा राम ने उत्तर मे।
रणभेरी गूजी अम्बर मे।

उलटा उसका उपहास हुआ
मन मे न जरा विश्वास हुआ,
पर उपर्युपरि युद्धोत्तेजक
ध्वनि से रण का आभास हुआ,
जाओ सेनानी ! तुम जाओ
सीधे समझे तो समझाओ,
ज्यादा चीचप्पड करते हो—
डडो से मार भगा आओ
सत्वर सेना को साथ लिए
हो सज्ज आ गया समर मे।
रणभेरी गूजी अम्बर मे।

* ज्यो ही कौशल की वरूथिनी रण-रेखा पर हुई खडी,
त्यो ही प्रतिपक्षी सेना, भूखे बाघो ज्यो टूट पडी।
एक-एक भट लगा भागने, कोई भी टिक सका नही,
यथाख्यातचारित्र सामने क्या ठहरेगा मोह कही ?

---

* रामायण

क्या नगरी के आरक्षक-गण—
भी किसी नशे में खोए हैं
या डर के मारे कहीं छुपे
करते संवाद परस्पर में।
रणभेरी गूंजी अम्बर में।

सनसनी भयंकर जनता में
मच रही कहीं पर भगदड़-सी
आयात-आस सब ठप्प हुआ
हो रही व्यवस्था गड़बड़-सी
जन-जीवन अस्त-व्यस्त बना
आतंक अतर्कित छाया है,
श्री राघव-लक्ष्मण के होते
यह कैसी किस की माया है,
ये कौन ? कहां से आए हैं ?
सब पूछ रहे एक स्वर में।
रणभेरी गूंजी अम्बर में।

आरक्षक-नायक ने देखा
जन-मानस संकट ग्रस्त हुआ
दल-बादल ज्यों बाहिर सेना
तो उसका अन्तर त्रस्त हुआ
आ राज्य सभा में बद्धाञ्जलि
बोला जन-नायक ! क्या जाने ?
किसने हम पर आक्रमण किया
उसको परमेश्वर पहिचाने
हलचल-सी खलबल-सी भारी
है उथल-पुथल भी पुर भर में।
रणभेरी गूंजी अम्बर में।

यह कैसे है डरपोक लोग
कुछ नही समझ मे आता है,
थोडी-सी खडबड सुनते ही
इनका मन घबरा जाता है,
आक्रमण अयोध्या पर कर दे
क्या कोई खेल तमाशा है,
यह कठिन कल्पना भी करना
थोथी-सी स्वप्निल आशा है।
आया है पथ-भूला कोई
यो कहा राम ने उत्तर मे।
रणभेरी गूजी अम्बर मे।

उलटा उसका उपहास हुआ
मन मे न जरा विश्वास हुआ,
पर उपर्युपरि युद्धोत्तेजक
ध्वनि से रण का आभास हुआ,
जाओ सेनानी ! तुम जाओ
सीधे समझे तो समझाओ,
ज्यादा चीचप्पड करते हो—
डडो से मार भगा आओ
सत्वर सेना को साथ लिए
हो सज्ज आ गया सगर मे।
रणभेरी गूजी अम्बर मे।

* ज्यो ही कौशल की वरूथिनी रण-रेखा पर हुई खडी,
त्यो ही प्रतिपक्षी सेना, भूखे बाघो ज्यो टूट पडी।
एक-एक भट लगा भागने, कोई भी टिक सका नही,
यथाख्यातचारित्र सामने क्या ठहरेगा मोह कही ?

---

* रामायण

सेना है या साए हो भाले के पकड़-पकड़ रगरूट
केवल भगमा ही सीखे ये मानो रेगिस्तानी ऊट।
कौन तुम्हारा है अधिनायक उसको आगे आने दो,
प्राण बचाकर जो बचारे आए उनको जाने दो।

दोहा

देख विपक्षी बल प्रबल चिन्तित सेनाध्यक्ष।
लड़ने में असमर्थ हैं हम इनके समकक्ष।

अहो! अकल्पित कल्पना होती है साकार।
सूर्य चन्द्र रहते हुए, तमसावृत संसार।

पहुँचाया अवधेश के निकट गुप्त संवाद।
'इक्षत का यह प्रश्न है' तुरत उठे सविषाद।

युग पलटा उलटी धरा या टूटा आकाश।
कौन कर रहा है अरे! यह असफल आयास।

विविध विकल्पों में विकल चले अयोध्यानाथ।
नानायुध गज रथ तुरग सारी सेना साथ।

उन अज्ञात युगल वीरों से करने को संग्राम।
रोषारुण हो समराङ्गण में आए लक्ष्मण राम।

अरुण नैन निष्करुण हृदय त्यों निष्प्रकम्प निस्नेह
थर-थर अधर वचन स डसते शस्त्र-सुसज्जित देह
सोच रहे जन अरे! हो गया है किसका विधु वाम।

भृकुटी चढ़ी है बड़ी भयंकर फड़क रहे भुज-दण्ड,
चमक रहे बिजली ज्यों रिपु को कर देने शत-खण्ड
है प्रचण्ड कोदण्ड हाथ में मूर्त रूप ज्यों स्वाम।

लम—मयथ भाव भगाएं जाएं

नल, सुग्रीव, विभीषण, अगद आजनेय से वीर,
अहप्रथमिका वाले योद्धा एक-एक से धीर,
सबको साथ लिए सत्वर गति, रघुकुल तिलक-ललाम।

आते ही देखा है सारी सेना अस्त-व्यस्त,
प्राप्त पराभव से विभीत से शोकाकुल सत्रस्त,
सूर्य सूनु, लकेश अडे आ, आमुख पर पग थाम।

दोहा

लगे कुचलने लवण दल प्रवल वना निज पक्ष।
नभचारी नारद निपुण ने निरखा प्रत्यक्ष।

भामण्डल-गृह रथनुपर पहुच गए अविलम्ब।
देखो कैसे लग रहा अधर अभ्र मे स्तम्भ।

* पूछ रहा सादर प्रणाम कर आज व्यग्रता है कैसी ?
ऐसी ही है वात अरे! पर तेरे तो सुनने जैसी।
पुडरीकपुर पर से उडते मिला जानकी का आभास।
निश्चित ही वह वैदेही थी, मुझे हो गया दृढ विश्वास।

वोल रहा भामण्डल दुखित हो, कैसी बाते करते हैं ?
जले-कटे घावो मे क्यो अव नमक-मसाले भरते हैं ?
श्वापद-सकुल सिहनाद वन मे जीने की क्या आशा ?
युग वीते, अव गगन कुसुम-सी करना उनकी अभिलाषा।

दोहा

निश्चित जीवित जानकी कहता हू मैं सत्य।
हैं! जीवित है, पूछता खेचरपति प्रणिपत्य।

* रामायण

बैठा-बैठा क्या यहाँ बना रहा है बात ?
उठ आ बैठ विमान में कर सत्वर साक्षात ।

आया है भामण्डल भाई
घनघोर अमा की रजनी में
आलोक किरण अभिनव पाई ।
आया है भामण्डल भाई ।

यह जनक विदेहा की बेटी
ऊँचे गवाक्ष में थी बैठी
आँखों में गिरते बाष्प बिन्दु
गहरे चिन्ताम्बुधि में पैठी
नभचर पति ने पहचान लिया
सीता है निश्चित जान लिया
फिर झुक कर देखा एक बार
नारद को सच्चा मान लिया
वर्षों से बिछुड़ी बहिन मिली
सौभाग्य वल्लरी लहराई ।
आया है भामण्डल भाई ।

अहा ! बुझे दीप में ज्योति जगी
मृत में संजीवन-शक्ति बसी
पादप में बिछुड़े जीवों की
खिल रही आज तो कली-कली
कल-कल बहती सूखी सरिता
पुलकित हो रही मूक कविता
पाताल भेद कर चमक गिरा
रजनी में उदित हुआ सविता

[illegible]

सलिला प्लावित है मरुस्थली
पतझड मे हरिहाली छाई।
आया है भामण्डल भाई।

गीतक छन्द

स्नेह सरवर मे निमज्जित वहिन-भाई मिल रहे,
चिर-विरह-दव-दग्ध उनके हृदय-उपवन खिल रहे।
मूक मन है, मूक वाणी, कुछ नही कह पा रहे,
वेदना सवेदना मे उभय बहते जा रहे॥

* चोटो पर चोटे आती, भाई! मैं क्या बतलाऊ?
फटती जाती है छाती, भाई! मै क्या वतलाऊ?

अगुलियो पर यो गिन-गिन,
कैसे काटे दुख के दिन?
बातें वे कही न जाती, भाई! मैं क्या वतलाऊ?

जैसे-तैसे बच पाई,
पुण्योदय से यहा आई,
समता से समय बिताती, भाई! मै क्या बतलाऊ?

दोनो भानेज तुम्हारे,
आशा के अमर सहारे,
उनसे थी जी बहलाती, भाई! मैं क्या वतलाऊ?

नारद ऋषि ने सुलगाया,
विद्रोही भाव जगाया,
बच्चे मेढक बरसाती, भाई! मैं क्या वतलाऊ?

---

* लय—मगल है आज तेरे शासन मे

लड़ने साकेत गए हैं
लड़ने साकेत गए हैं
रह गई मैं तो समझाती भाई ! मैं क्या बतलाऊं ?

दोहा

अरी ! सयानी सोदरी यह क्या किया अनर्थ ?
मैं समझाती रह गई, है इसका क्या अर्थ ?

क्यों उनको जाने दिया लिया नहीं क्यों रोक ?
वे थे बच्चे क्यों नहीं दिखलाया आलोक ?

चलो चलो जल्दी चलें कहीं न बिगड़े काम ।
पूर्णतया अनभिज्ञ हैं उनसे लक्ष्मण राम ।

† चले त्वरित मन पवन-वेग से रण प्रांगण में आए हैं
लवणांकुश न जननी के चरणों में शीश झुकाए हैं ।
भामण्डल का परिचय था सविनय दोनों ने किया प्रणाम
गले लगाया गोद बिठाया कैसा मधुर मिलन का याम ?

समझाता मातुल भामण्डल ऐ ! वीरों ! जरा विचार करो ।
तुम करो न ऐसे उथल-पुथल धीरों ! मन में कुछ धैर्य धरो ।

परिपक्व नहीं अब तक अनुभव साहस करना तुम कब सीखे
उसमें भी सम्मुख अवधेश्वर कर शक्ति संतुलित कदम भरो ।

तरुणाई की अरुणाई में कर्त्तव्य स्वयं का मत भूलो
आवेश हटा विक्षेप मिटा माता के मन का क्लेश हरो ।

मिलना हो तुम्हें पिता जी से तो विनय-भक्ति के साथ मिलो
हे ! सूर्य वंश वैडूर्य जरा अपने कुल का आदर्श-स्मरो ।

---

† रामायण
लय—घनश्याम तुम्हारे द्वारे पर

दोहा

जीते तो भी हार है, हारे तो भी हार।
घर मे क्षति, जग मे हसी, अरे! उभयत मार॥

* हमने सोचा मामाजी आए उत्साह बढाने को,
किन्तु आप तो आए हम को उल्टा पाठ पढाने को।
आए इतने दल-बल से, क्या बिना लडे ही फिर जाए?
मान पराजय झुक जाए? क्या करें? आप ही समझाए।

दोहा

बतलाए किस बात मे हम है उनसे न्यून।
माता के अपमान पर उबल रहा है खून।

समझ गया मण्डल महिप उनका देख उबाल।
अपने रुख को बदलते, बोल उठा तत्काल।

† वाह! वीरो जैसी आशा थी
वैसे ही तुम निकले सपूत,
अब मैं भी साथ तुम्हारे हू
लो, बढो क्रान्ति के अग्रदूत,
है पक्ष हमारा न्यायपूर्ण
अन्यायो का बदला लेंगे,
इन शस्त्रास्त्रो से शौर्य भरा
पूरा-पूरा परिचय देगे।

दोहा

खेचरपति शर-चाप ले बढे छेडने युद्ध।
कपिनायक, लकेश का किया मार्ग अवरुद्ध।

* रामायण
† सहनाणी

विद्याधरपति को उधर देख रहे निस्तब्ध।
सहसा उनके वदन से निकल पड़े ये शब्द।

भामण्डल ! यह क्या अरे ! रिपु सेना के साथ।
युद्ध नहीं है हां न हो यहां और ही बात।

आओ भामण्डल ! अपने दल में आओ।
क्यों उधर खड़े हो कारण तो समझाओ।

तुम भूल रहे हो यह दल नहीं हमारा
हां तुम भूल रहे हो यह दल नहीं हमारा।
'क्यों ? रघुवर से ही है सम्बन्ध तुम्हारा ?
हां हां सीता से ही सम्बन्ध हमारा।
सीता न रही तो भी प्रतिबन्ध हटाओ !
क्यों उधर खड़े हो कारण तो समझाओ।

सीता न रही तो कहो राम क्या लगते ?
ऐसे भामण्डल क्यों बातों में ठगते ?
है ठगने की क्या बात ? हाथ सम्भालो
चलते न अस्त्र भैया ! यह भ्रान्ति निकालो ?
पहले ये दोनों कौन ? रहस्य बताओ !
क्यों उधर खड़े हो कारण तो समझाओ।

आओ ! सन्निकट जरा हो यदि जिज्ञासा ?
'सो बतलाओ उत्कट अन्तर अभिलाषा।
धीमे से बोले—ये सीता-सुत प्यारे
लवणांकुश दोनों राघव कुल उजियारे।
क्या सीता जीवित ? है तो हमें दिखाओ ?
क्यों उधर खड़े हो कारण तो समझाओ।

लावणी

दोहा

चुपके से चलते बने रथनुपुर पति साथ ।
आ बैठे सीता निकट कपिपति, लकानाथ ।

महारथी चलते गए पाया कर-सकेत ।
वैदेही के यान मे, हुए सभी समवेत ।

लवणाकुश के सामने टिका न राघव-सैन्य ।
मानो भगदड-सी मची छाया दुर्दम दैन्य ।

* बोले लक्ष्मण से श्रीराम ,
देख पलायन अपने दल का विचलित से परिणाम ।
बोले लक्ष्मण से श्रीराम ।

आता नही समझ मे भाई !
कैसी विकट परिस्थिति आई ,
कौन अयोध्या पर चढ आए ? क्या है इनके नाम ?

सचमुच ही ये सबल साहसी ,
मन मे उठती आह दाह-सी ,
पता नही है इस आहव का क्या भावी परिणाम ।

कहा सभी वे वीर हमारे ,
कहा सभी वे धीर हमारे ,
नही दीखता है कोई भी गतरस होता काम ।

अपने को चलना ही होगा ,
रिपु दल को दलना ही होगा ,
कलनातीत हुई है यह छलना गतिविधि सारी वाम ।

* लय—जागो जागो हे नादान

दोहा

उधर संग से बढ़ रहे लवणांकुश उद्दाम।
रथारूढ़ सम्मुख खड़े उनसे लक्ष्मण राम।

† भाई! लक्ष्मण ये दोनों लगते हैं प्यारे-प्यारे।
लगते हैं प्यारे प्यारे जैसे नयनों के तारे।
कहता अन्तर-दिल कोई सम्बन्धी निकट हमारे।
भाई! लक्ष्मण ये दोनों लगते हैं प्यारे-प्यारे।

कैसी सुन्दर आकृति है
मानो अपनी प्रतिकृति है
रह-रह कर मन में आता
मिलने को बांह पसारें।

आंखें उत्फुल्ल कमल-सी
मादक-सी और अमल-सी
अमृत-सा बरस रहा है
मधुवन से मोहनगारे।

कोमल कर कमल-नाल से
आकर्षक बाल-धाम से
सुन्दर अति सरस सलौने
सुगठित हैं अवयव सारे।

कर-धर कोदण्ड सयाने
इनको कैसे पहिचानें
पूछें भी तो कब कैसे?
किसके ये राज-दुलारे।

* अजी ! तुम लडने आए।
खडे-खडे क्या देख रहे हो यो मुह-बाए।
बोल रहे लवणाकुश कर-शर-चाप चढाए।
अजी ! तुम लडने आए।

यह रण कोई नही तमाशा,
पूछो जो भी हो जिज्ञासा,
समाधान देने शस्त्रास्त्र-शास्त्र हम लाए।

तुम हो महायुद्ध के जेता,
समरागम के पूरे वेत्ता,
हमने सुनी तुम्हारी भारी दन्त-कथाए।

इन हाथो से रावण मारा ?
एसे जीता भारत सारा ?
लडने नहीं, सीखने आए युद्ध-कलाए।

अकुश ! हमने क्या जाना था ?
इन्हे विश्व-विजयी माना था,
पर इनकी तो काप रही है अरे ! भुजाए।

देख रहे हो क्या जी भरके,
दिखलाओ कुछ साहस करके,
हमे सिखाओगे तुम, या हम तुम्हे सिखाए।

† बच्चो तुम ! रहने दो उपदेश, घर को जाओ, जाओ।
लेते क्यो व्यर्थ मोल सक्लेश, घर को जाओ, जाओ।
जाओ ! जाओ ! प्राण बचाओ,
क्या अच्छा है इतना आवेश, घर को जाओ, जाओ।

---

* लय—राग री रैंस पिछाणो

† लय—कैसो निकाल्यो भिक्षु पथ

किसके कहने से तुम आए
किसके द्वारा हो उकसाए
अधर्मों ! दीपक में झंपापात ज्यों मत लाओ लाओ।

लाओ थोड़ी है क्या लेना ?
भीषण है रण का पथ पैना,
मरने से पहले अन्तिम बार मित्रों से मिल आओ।

हमको तुम पर करुणा आती
चलती तलवारें मदमाती
बच्चों की हत्या का यह पाप रे ! मत व्यर्थ लगाओ।

सेना है क्या सैनिक शिक्षा
शिक्षा केन्द्रों में ली दीक्षा
बचपन में ऐसे व्यंग-विनोद कर मत मीत भुलाओ।

कोरे बना रहे हो बात
बाकी बना रहे हो बात
या डालो हथियार नहीं तो लड़ो हमारे साथ।

करुणा किसी दीन पर करना
महोसी किसी हीन की भरना
क्षमा-पात्र हम नहीं तुम्हारे क्यों फैलाएं हाथ।

सेना कुछ भी नहीं हमारे
दहल गये क्यों हृदय तुम्हारे
हम तो आये यहां देखने करामात साक्षात।

हम हैं नैसर्गिक संस्कारी
प्राप्त कर चुके अनुभव भारी
और तुम्हारी भी तो सारी जान रहे हैं ख्यात।

लय—अरे ! ओ ! भारत के मजदूर

मूल्यवान मत समय बिताओ,
आओ अब शस्त्रास्त्र उठाओ,
पहले हमसे लडो, अडो फिर, भर देगे आघात।

† सुनो सैनिको अब तुम सारे करो सहर्ष पूर्ण विश्राम,
द्वन्द्व-युद्ध चारो मे होगा नही तुम्हारा इसमे काम।
सभी देखते रहो शान्त हो भित्ति चित्रवत् बन निष्काम,
यो कह उतरे समरागण मे लवणाकुश श्री लक्ष्मण-राम।

राघव का स्यन्दन कृतान्तमुख, सौमित्री का वीरविराध,
वज्र लवण का, पृथु अकुश का चला रहे है अव्यावाध।
बचा बचा कर पितु-पितृव्य को छोड रहे सीता-सुत तीर,
करते विद्ध शताग अग को घायल कर-कर अश्व-शरीर।

गीतक छन्द

तीक्ष्ण आयुध राम-लक्ष्मण के घनाघन चल रहे,
किन्तु उनके अस्त्र ही हा! आज उनको छल रहे।
फेंकते हैं किधर, जाते किधर ही,] लगते कही,
साधना-साधित अत आघात करते हैं नही।

रथ चलाओ, कुचल दो, यो कह रहे है सूत से,
तप्त प्रकुपित राम-लक्ष्मण हो रहे हैं भूत से।
करे क्या रथ हुए जर्जर, अश्व घायल हो गए,
खीचते वल्गा हमारे हाथ दुर्वल हो गए।

दोहा

लिया हाथ मे राम ने आयुध वज्रावर्त।
शिञ्जिनी को तान कर शर फेंका पर व्यर्थ।

---

† रामायण

एक-एक कर यों सभी अस्त्र गए बेकार।
श्रद्धा ज्ञान बिना यथा क्रिया न हरती भार।

यों लक्ष्मण के भी सभी हुए निरर्थ हथियार।
दया-दान संयम बिना ज्यों होते निस्सार।

अति चिन्तन में हा रहे उभय बन्धु गम्भीर।
और इधर से चल रहे तीखे तानें तीर।

* वाह! वाह! तुम तो बड़े ही कमजोर निकले
हमने समझा था और कुछ, और निकले।
बस क्या ऐसे ही चतुर चकोर निकले
हमने समझा था और कुछ और निकले।

तुम तो सुनते थे विश्व विजेता हो
सारे भारत भू-मण्डल के नेता हो
किन्तु कोरे बातों के बतखोर निकले।
हमने समझा था और कुछ, और निकले।

पहिले ही ज्ञात होता तो आते नहीं
ऐसे इज्जत तुम्हारी गंवाते नहीं
कायरों के ही सच्चे शिरमोर निकले।
हमने समझा था और कुछ, और निकले।

इतना कहने पर भी एक लगती नहीं
कैसे बेशर्मी है? टीस जगती नहीं
हम तो कितनी ही बार झकझोर निकले।
हमने समझा था और कुछ और निकले।
थोथे जैसे इन बाणों में प्राण है नहीं
होगा इनसे तुम्हारा भी त्राण तो नहीं

लय—मधुबन का एतान सुल्ने वाल धुनली

करके एक एक सब को बटोर निकले।
हमने समझा था और कुछ, और निकले।

दोहा

सुन कटु बात विपक्ष की जगता जोश सरोष।
बरसाते बाणावली, करते अति आक्रोश।

किन्तु लक्ष्य को एक भी नही बींधता ठीक।
बिना अक के शून्य के सख्या यथा अलीक।

गीतक छन्द

सोचते है उभय भ्राता कहा जाए ? क्या करे ?
समझ मे कुछ नही आता किसे पूछें ? क्या करें ?

उत्तरोत्तर शस्त्र सारे आज उत्तर दे रहे,
जो अमोघ अचूक थे वे सब विदाई ले रहे।
शिथिल-सी दोनो भुजाए, ग्रथिल-सा चैतन्य है,
बिना सोचा, बिना समझा, आ गया कार्पण्य है।
हे त्रिलोकी नाथ ! भ्राता, कहा जाए ? क्या करे ?
समझ मे कुछ नही आता किसे पूछे ? क्या करे ?

हो रही अज्ञात सिहरन, और कम्पन देह मे,
रोष आता, उतर जाता, हृदय डूबा स्नेह मे।
बिना अन्तर-दाह कैसे युद्ध हो सकता कहो ?
बिना अन्तर-आह कैसे युद्ध हो सकता कहो ?
विधि-विधानो के विधाता ! कहा जाए ? क्या करें ?
समझ मे कुछ नही आता किसे पूछे ? क्या करें ?

हृदय कहता मिले, स्थितिया बाध्य करती युद्ध को,
प्रथम ही अवसर हमारा पथ हुआ अवरुद्ध हो।

मिश्र गुण जैसी अवस्था स्वान्त डांवाडोल है
तोल है ना मोल है ना इधर मधुर मसोस है।
विकल-सा मन छटपटाता कहां जाएं ? क्या करें ?
समझ में कुछ नहीं आता किसे पूछें ? क्या करें ?

‡ इतने में अकस्मात अचूक
आकस्मिक बाण चलाया है
जा लगा वीर वक्षस्थल में
पल में लक्ष्मण मूर्छाया है
स्वामी को संज्ञा-शून्य देख
स्यन्दन विराध ने मोड़ लिया
श्री वासुदेव के जीवन में—
इतिहास अनोखा जोड़ दिया।

† हाहाकार मचा सेना में संकट आ गया रे।
आंखों में अंधेरी सन्नाटा छा गया रे।

हक्के बक्के सैनिक सारे
कांप रहे हैं भय के मारे
अब क्या महाप्रलय होगा रे!
बिगड़ी कौन सुधारे सब का जी घबरा गया रे!

सहसा संचित साहस टूटा
मानों बांध धैर्य का फूटा
सच्चा सबल सहारा छूटा
रूठा भाग्य देवता उलटा भाग चला गया रे!

---

‡ सहनाणी

† लय—सीता माता की गोदी में हनुमत डारी मुद्री

छोटे-छोटे दीख रहे है,
कहते रण हम सीख रहे है,
मारे कथन अलीक रहे है,
चीख रहे है सब, क्या इन्द्रजाल आया नया रे!

* पा मृदु मनहारी मन्द पवन
लक्ष्मण ने जब पलके खोली,
देखा रथ को वापिस जाते
तत्क्षण अन्तर-आत्मा डोली,
क्या कर डाला? यह रे विराध!
तू मुझे किधर ले जाता है,
रम रहे राम रण-प्रागण मे
क्या लक्ष्मण घर को जाता है।

चल झटपट ले चल मुझे वहा
अकुश को अकुश मे लूगा,
जाते ही सीधा चला चक्र
वैरी का मस्तक छेदूगा,
बातो-बातो मे पहुच गया
वहा पवन-वेग सीधा स्यन्दन,
कस-कस तीखे ताने हस-हस
अकुश करता है अभिनन्दन।

† रे! अकुश! हो जा अब तैयार।
सस्मित विस्मित सभी सुन रहे लक्ष्मण की ललकार।
रे! अकुश! हो जा अब तैयार।

---

* सहनाणी
† लय—जगाया तुमको कितनी बार

इधर गया रे ! तू अभिमानी
सीमा पार हुई शैतानी
नहीं चलेगी अब मनमानी
एक बार में ही उतरेगा सारा शिर का भार।

तुमने था इतना समझाया
अच्छा मान प्यार दिखलाया
उसका यह आभार चुकाया
बढ़-बढ़ बोल रहा था अब बस मेरा एक प्रहार।

यों कह कर में चक्र उठाया
शीश गगन में उसे घुमाया
मानो अपरादित्य उगाया
झणणं भणण की ध्वनिता सह उछल रहे अंगार।

सन्न रह गए दर्शक सारे
मर जाएंगे ये बेचारे
पता न क्यों ये गए उभारे
क्यों आए हैं इनसे अपना करवाने संहार।

घुमा घुमा कर जोश जगाया
मार शत्रु आदेश लगाया
त्वरित तड़ित् गति चक्र चलाया
छाया है अब महा प्रलय-सा सारे चिमाकार।

बन चक्र चक्कर कर रहा—
है अनुज का सादर अभिनन्दन
देता प्रदक्षिणा बार-बार
लक्ष्मण राघव का विस्मित मन

महनागणी

कर शिथिल हुए, मुह उतर गए,
नयनो मे रजनी-सी छाई
अब भाग्य पलटने की भाई।
यह नई चुनौती-सी आई।

क्या वासुदेव बलदेव नए ?
दोनो ये धरती पर उतरे,
क्या अच्छरेग होने वाला ?
कुछ भी न रहस्य समझ पाए,
रवि होते रवि का उदय हुआ ?
तीर्थंकर रहते तीर्थंकर ?
अनहोनी यह कैसे होगी ?
मस्तिष्क खा रहा है चक्कर।

* कर प्रदक्षिणा अकुश की अब पुन आ रहा चलता चक्र,
लगा रामलक्ष्मण को ज्यो कल्पान्त काल पवनोद्धत नक्र।
अब यह निश्चित ही आता है करने नर-हरि का सहार,
मुखडा कुम्हलाया उत्फुल्ल कमल पर मानो गिरा तुषार।

दशकधर का इसी चक्र ने इसी रीति से किया विनाश,
दर्शक जन निस्तब्ध खडे हैं डोल रहा सब का विश्वास।
आते ही सन्निकट वीरवर ने दक्षिण कर फैलाया,
बैठ गया उसमे स्थाग जब, तब कुछ जी मे जी आया।

गीतक छन्द

हैं सुनिश्चित ये हमारे निकट सम्बन्धी सही,
अन्यथा चक्राक्रमण यह व्यर्थ यो जाता नही।

---

* रामायण

दोहा

अरे! आग में क्यों मुझे! खींच रहे हो आज्य।
और व्यथित तो मत करो जाने दो साम्राज्य।

* कर कलंकित उसे राम तो वन में रख आए,
किन्तु शील का बल था उसमें महिरुह सरसाए
सहज ही टली आपदाएं।

उसके नन्दन अपमानन्दन इनको पहिचानो,
छोड़ रोष आक्रोश कथन मेरा सच्चा मानो
दूर हों सारी दुविधाएं।
आंख खोल कर जरा ध्यान दे एक बार झांको
इनमें अपना अंश झांक सकते हो तो झांको
अधिक क्या अब हम समझाएं।

† जी में आए सो मुझे कहो
भाई! मैं हूं घर का योगी
पर अस्त्र तुम्हारे रहे अफल
कुछ तो दग् खोड़ाई होगी?
इतना भी चिन्तन कर न सके
जब चक्र सुदर्शन नहीं चला
यों बिना तुम्हारे पुत्रों के
गढ़ सकता ऐसे कौन भला?

ये दमखम सबल सभ्य करके
अप्रमत्त शिक्षामें आए हैं
पतिता न मुझ या प्रतिनता—
ये तुम्हें बताने आए हैं।

---

* लय — नाचत धीमो चरम्या रे

† महनारी

सत्पुत्र कभी यो माता का
अपमान नही सह सकते हैं,
पाते ही सचमुच शुभ अवसर
वे मौन नही रह सकते हैं।

गीतक छन्द

सुधा-स्रावी शब्द सुन ये हृदय गद्गद् हो गए,
प्रम के अविरल अनन्त अथाह जल मे खो गए।
उतर रथ से छोड आयुध, उभय मिलने जा रहे,
इधर लवणाकुश समुद सानन्द, सविनय आ रहे।

* कुछ लज्जित से, कुछ सज्जित से
चरणो मे शीश झुकाते हैं,
नहलाते लोचन धारा से
दोनो को गले लगाते हैं,
शर पर रख कर कर बार-बार
कोमल तन को सहलाते हैं,
शुक्ल-ध्यानी ज्यो एक चित्त
उनमे तन्मय हो जाते हैं।

† स्नेह-सुधा से सिंचित कण-कण आज अयोध्या का सारा।
उमड पडी है अविरल गति से पुत्र-प्रेम की उज्ज्वल धारा।
स्नेह-सुधा से सिंचित कण-कण आज अयोध्या का सारा।
उमड पडी है अविरल गति से पितृ-प्रेम की उज्ज्वलधारा।

पुत्र पिता से, पिता पुत्र से, परम मुदित मन मिलते है।
शशि को देख सिन्धु, रवि-दर्शन से पङ्कज ज्यो खिलते हैं।
विनय और वात्सल्य बरसता है भोगी पलको के द्वारा।
स्नेह-सुधा से सिंचित कण-कण आज अयोध्या का सारा।

---

* सहनाणी
† लय—प्रभो ! तुम्हारे पावन पथ पर

आए हमको पूछने क्या न देखते आप ?
धरा पराई हो रही प्रतिहत पुण्य-प्रताप।

* नही मुझे तो एसी स्थितिया देती दिखलाई,
यो मत व्याकुल बनो जरा धीरज रक्खो भाई,
धैर्य के फल मीठे गाए।

खिलने के अवसर पर क्या कोई यो मुरझाता,
मिलने के अवसर पर क्या कोई यो सकुचाता।
विकलता तुम जैसे पाए।

दोहा

की सेवा जो आज तक उसका यह परिणाम।
राज्य पराया हो रहा, कहते अच्छा काम।

होश उड रहे हैं यहा, आप रखाते स्थैर्य।
हाथ जोडते दूर से धन्य आपका धैर्य ?

त्यागी सन्यासी बने करना था परमार्थ।
किन्तु आप तो कर रहे, पिशुन नाम को सार्थ।

* ऋषि तो भक्तो को परमार्थ-पथ ही दिखलाते,
पर विरले मर्मज्ञ समझते सन्तो की बाते,
अगर अन्तर-पट खुल जाए।
बडा रहस्योद्घाटन करने नारदजी आए।

सभी शान्त हो जाओ मेरी सुनो ब्रह्म-वाणी,
रामचन्द्रजी के थी सीता नामक महारानी,
जगी नव मे जिज्ञासाए।

---

* लय—तावडा धीमो पडज्या रे

दोहा

अरे ! आग में क्यों मुने ! सींच रहे हो भाग्य ।
और व्यथित तो मत करो आने दो साम्राज्य ।

* कर कलंकिता उसे राम तो वन में रख आए
किन्तु शील का बल था उसमें महिमा बरसाए
सहज ही टली आपदाएं ।

उसके नन्दन नयनानन्दन इनको पहिचानो
छोड़ रोष आक्रोश कथन मेरा सच्चा मानो
दूर हों सारी दुविधाएं ।
आंख खोल कर जरा ध्यान दे एक बार झांको
इनमें अपना अंश आंक सकते हो तो आंको
अधिक क्या अब हम समझाएं ।

† जी में आए सो मुझे कहो
भाई ! मैं हूं घर का योगी
पर अस्त्र तुम्हारे रहे अफल
कुछ तो हग दौड़ाई होगी ?
इतना भी चिन्तन कर न सके
जब चक्र सुदर्शन नहीं चला
यों बिना तुम्हारे पुत्रों के
अब समझा ऐसे कौन भला ?

ये दलबल सबल साथ करके
अरमान दिखाने आए हैं
वनिता के सुत या अभिमता—
ये तुम्हें बनाने आए हैं ।

* लय—नारका चीरों पकड्या रे
† लहनाली

सत्पुत्र कभी यो माता का
अपमान नही सह सकते हैं,
पाते ही सचमुच शुभ अवसर
वे मौन नही रह मकते हैं।

गीतक छन्द

सुधा-स्रावी शब्द सुन ये हृदय गद्गद् हो गए,
प्रम के अविरल अनन्त अथाह जल मे खो गए।
उतर रथ से छोड आयुध, उभय मिलने जा रहे,
इधर लवणाकुश समुद सानन्द, सविनय आ रहे।

* कुछ लज्जित से, कुछ सज्जित से
चरणो मे शीश झुकाते हैं,
नहलाते लोचन धारा से
दोनो को गले लगाते हैं,
शर पर रख कर कर बार-बार
कोमल तन को सहलाते हैं,
शुक्ल-ध्यानी ज्यो एक चित्त
उनमे तन्मय हो जाते हैं।

स्नेह-सुधा से सिंचित कण-कण आज अयोध्या का सारा।
उमड पडी है अविरल गति से पुत्र-प्रेम की उज्ज्वल धारा।
स्नेह-सुधा से सिंचित कण-कण आज अयोध्या का सारा।
उमड पडी है अविरल गति से पितृ-प्रेम की उज्ज्वलधारा।

पुत्र पिता से, पिता पुत्र से, परम मुदित मन मिलते हैं।
शशि को देख सिन्धु, रवि-दर्शन से पङ्कज ज्यो खिलते हैं।
विनय और वात्सल्य बरसता है भोगी पलको के द्वारा।
स्नेह-सुधा से सिंचित कण-कण आज अयोध्या का सारा।

---

* सहनाणी

† लय—प्रभो ! तुम्हारे पावन पथ पर

* अपने पुत्रो को लेकर पुर मे राम आ रहे।
हृदय सब के हर्षा रहे,
परम आनन्द मना रहे।

सज्जित है नगरी सारी,
सोत्सुक है सब नर-नारी,
हो हो उद्ग्रीव पथ पर पलक बिछा रहे।

दर्शक आगे से आगे,
जाते हैं भागे-भागे,
अनुशासन के नियमो को अटल निभा रहे।

पथ की है उचित व्यवस्था,
गति-विविया सारी स्वस्था,
जय-जय ध्वनि से धरणी अम्बर गुजा रहे।

राघव सौभागी कैसे ?
घर आए नन्दन ऐसे।
यो जन-जन मुक्त कण्ठ से महिमा गा रहे।
दशरथ सुत प्रमुदित आनन,
बरसाते जलधर बन घन,
सबको कर तुष्ट पुष्ट उत्साह बढा रहे।

† ऊचे छज्जो पर, छत पर हैं
समवेत नगर की महिलाए,
उस समय उन्हे कुछ पता नही
रह गए कहा शिशु-बालाए,
सुध-बुध भूली सबकी पलकें
थीं लवणाकुश पर बिछी हुई,

---

* लय—यह है जगने की वेला
† सहनाणी

आंखो के आगे नाच रही-
छवि बिना यत्न के लिखी हुई।

सबका अभिवादन झेल रहे
सविनय समुदित सुकुमार युगल
प्रतिपल विकसित मानस शतदल
हर्षातिरेक से रहे उछल
हैं सफल सुफल सब आशाएं
आनन्दाप्लावित अन्तस्तल
उल्लसित वायुमण्डल सारा
पग-पग जय-जय मंगल-मंगल।

: ७ :

अग्नि-परीक्षा

आंखों के आगे नाच रही—
छवि बिना यत्न के खिंची हुई।

सबका अभिवादन झेल रहे
सविनय समुदित सुकुमार युगल
प्रतिपल विकसित मानस शतदल
हर्षातिरेक से रहे उछल
हैं सफल सुफल सब आशाएं
आनन्दाप्लावित अन्तस्तल
उल्लसित वायुमण्डल सारा
पग-पग जय-जय मंगल-मंगल।

●

गीतक-छन्द

समय वर मध्याह्न का रवि मध्य है आकाश मे,
शिखर पर पहुचा यथा यौवन प्रपूर्ण प्रकाश मे।
क्षेत्र छाया का सुविस्तृत हो रहा सक्षिप्त है,
त्याग से अविरति घटाता श्राद्ध ज्यो निर्लिप्त है।

श्रमिक सारे श्रम-परायण कार्य मे रत हो गए,
यथा सज्जन जन सहर्ष परोपकृति मे खो गए।
गृहिणिया गृह-कार्य निरता, छात्र शिक्षण मे लगे,
यथा योगी-चेतना हो स्वात्म वीक्षण मे लगे।

कर रहे हैं श्राद्ध सामायिक श्रमण-समुपासना,
सुन रहे उपदेश मुनियो का मिटाने वासना।
आलसी खा-पी खुशी से तान खूटो सो रहे,
व्यर्थ बातो मे कई अनमोल अवसर खो रहे।

दोहा

शान्त मना एकान्त मे बैठे हैं श्रीराम।
भोजन से विनिवृत्त हो करने को विश्राम।

सौमित्री, शत्रुघ्न त्यो, पवनपुत्र, सुग्रीव।
लकापति, अगद प्रमुख आए मिल उद्ग्रीव।

कर स्वीकृत अवधेश ने सबका सविधि प्रणाम।
आए कैसे इस समय ? पूछा क्या है काम ?

प्रतिनिधित्व करते हुए बोले लक्ष्मण आर्य!
आज एक अभ्यर्थना आवश्यक अनिवार्य।

* अब भी हो जरा विचार विश्व आभार, राम के द्वारा।
सीता का कौन सहारा?

पति-पुत्र विरह की जो सीली असिधारा।
सीता का कौन सहारा?

प्रभु को ऐसे ये पुत्र मिले
कुल-सम्वर्धन के सूत्र मिले
सोचें यह किसका सफल उपक्रम सारा।

कह कलंकिता वन में छोड़ा
बेचारी को तृण ज्यों तोड़ा,
कर भापणतम अपमान उसे दुत्कारा।

पुत्रों से समय बिताती थी
ज्यों-त्यों कर मन समझाती थी
वे भी न यहां अब कहो रहा क्या चारा?

उसका भी तो कुछ जीवन है
रघुकुल का जो संजीवन है
इस ओर किसी ने अब तक नहीं निहारा।

यों जीवन कितना दुर्भर है
पल-पल पल्योपम सागर है
कसे जीवन से वह भी कहीं किनारा।

आज्ञा हो तो मिलकर आएं,
अब ससम्मान हम ले आएं
आशा है प्रभु मानेंगे विनय हमारा।

अच्छा है वातावरण अभी
अच्छा अवसर यह प्रभो! अभी
सुन पु "निमन्त्रित" है पर्याप्त इशारा।

* लय—है अद्भुत एक नजारा

गीतक-छन्द

बहुत अच्छी मन्त्रणा दी समय पर आकर मुझे,
हो गया विश्वास, विजयी-पुत्र दो पाकर मुझे।
शीघ्र जाओ, मना लाओ, है सती सीता सही,
कहे कुछ भी लोक, मानूगा न अब मैं एक ही।

दोहा

सत्वर पुष्पक-यान ले चले कपीश्वर आर्य।
पुतला आहारक का यथा करने अपना कार्य।

पुडरीकपुर मे पहुच वैदेही के पास।
बद्धाञ्जलि अनुनय-विनय करते हैं सोल्लास।

* महासती! अब हम पर महर करे,
चले अयोध्या रघुवर अन्तर क्लेश हरे।

कुल कमले! कमनीय कले! अमले! अचले! सन्नारी!
सहज सुव्रते! सौम्य सुशीले! अननुमेय अविकारी।
होगे हम सब आभारी,
शुभ-दर्शन दे सरस सौख्य वितरे।

भेजा पुष्पक यान राम ने ससम्मान ले आने,
आया मैं उनसे ही प्रेषित विधिवत् आज बुलाने,
यह विनय दास की माने,
वदन-सोम से स्वीकृति-सुधा झरें।

हुआ आपके पुण्योदय से परम हर्ष घर-घरमे,
बढी सौगुनी माता की शोभा साकेत नगर मे,
पर पीडा प्रभु के स्वर मे,
रत्न-प्रसूते! अपना स्थान वरें।

---

* लय—जय जय जगमग विद्या ज्योति जरे

जीवन भर मैं साथ रही
फिर भी पाए पहिचान नहीं
कहलाते हो अन्तर्यामी
किस भ्रम में भूले हो स्वामी !

थीं कितनी विपदाएं झेली,
मैं तो प्राणों पर थी खेली
रही प्रतिपल प्रभुपद अनुगामी
किस भ्रम में भूले हो स्वामी !

अपने तन-मन को टटोलो
मेरी सौगन्ध सत्य बोलो
क्या देखी मेरे में खामी
किस भ्रम में भूले हो स्वामी !

इस भवना से आक्रोश किया
किस भव का बदला हाय ! लिया
हित कामी बन क्यों प्रतिगामी
किस भ्रम में भूले हो स्वामी !

नहीं, नहीं मेरे मन में तो इसका जैसा कोई तत्त्व
दर्शित ! अप्रतिहत आस्था है मानों ज्यों क्षायक सम्यक्त्व ।
जन-जन का उन्माद मिटाने सचमुच यही अचूक दवा
सफल परीक्षण हो जाने से हो जाएगी शुद्ध हवा ।

दोहा

बनिते ! बुरा न मानना आशय मेरा स्पष्ट ।
दमतदामगगा मि विविध कष्ट हुआ ना नष्ट ।

प्रमुदित मना मनस्विनी बोली गिरा गम्भीर ।
तब नहीं जितनी करो कर्म परीक्षा पीर ।

* कहो ज्यो दिखलाऊ, मेरा अटल सतीत्व।
कहो ज्यो बतलाऊ, मेरा अडिग सतीत्व।

पावक की ज्वाला झेलू,
या पन्नग से भी मैं खेलू,
अत्युष्ण कोश भी पी जाऊ, मेरा अटल सतीत्व।

उत्तप्त उठाऊ गोला,
खाल मे जलता-शोला,
मैं रिक्त तुला पर तुल जाऊ, मेरा अटल सतीत्व।

अम्बर मे अधर रहू मैं,
आतप अत्युग्र सहू मैं,
जल मे स्थल, स्थल मे जल लाऊ, मेरा अटल सतीत्व।

दोहा

अन्तिम निर्णय मे हुआ निश्चित अग्नि-स्नान
सत्वर सब होने लगा एकत्रित सामान

अति विशाल समतल धरा, देख एक उपयुक्त।
स्थान परीक्षा का वही माना सबने युक्त।

‡ खुदवाई मध्योमध्य एक
गहरी लम्बी चौडी खाई,
जिससे समुपस्थित जनता को
वह दृश्य दे सके दिखलाई,
खैरो के लक्कड चीर-चीर
आद्यन्त उसे भरवा डालो,

---

‡ लय—दीपावा ले नन्द
* सहनाणी

दोहा

कपिपति मैं भूली नहीं वह भीषण कान्तार।
नहीं और अब चाहिए स्वामी का सत्कार।

हाथ जोड़ती दूर से उनको मैं महाराज।
क्या करना अब शेष है बुला रहे जो आज।

हाँ ! रह रह उठता मनसि एक अवश्य विचार।
ज्यों-त्यों उतरे शीश से यह लांछन का भार।

नहीं चाहती हूं मरू मैं यह लिए कलंक।
कह दो जा उनसे यही मेरी बात निशंक।

यदि करवाए दिव्य तो मैं आने तैयार।
जो भी वे आदेश दें है सहर्ष स्वीकार।

गीतक छन्द

जा कपीश्वर ने सुनाया नहीं आती जानकी
है न उसको फिर अपेक्षा धार्म के सम्मान की।
नहीं होगा जा अयोध्या अब अधिक बदनाम है
स्पष्ट कहती राम से मेरे न कोई काम है।

राम की जो थी धरोहर सौंप दी वह राम को
बुला पतिता को कलंकित कर रहे क्यों नाम को।
हाँ कलंक उतारने अब कहें आऊंगी वहां
जो कहेंगे वे परीक्षा मैं दिखाऊंगी वहां।

यह सुनते ही राघव के चेहरे पर आई चमक नई
रोमोद्गम-सा हुआ युगल पलकें तत्क्षण झपझपा गई।
है सीता में इतनी दृढ़ता है सतीत्व पर इतना जोश
अटल आत्म-विश्वास सघन बल बतलाता उसका उद्घोष।

* रामायण

शीघ्र उसे ले आओ, दिखलाए जनता को सही स्वरूप,
होगी उचित व्यवस्थाए, सारी उसके मन के अनुरूप।
मैं सहर्ष सहमत हू, सीता आकर अग्नि-परीक्षा दे,
गौरव बढा सूर्य-कुल का, इस जड जनता को शिक्षा दे।

दोहा

किष्किन्धाधिप ने दिया, जा सुखकर सवाद।
वैदेही के हृदय मे उमड पडा आल्हाद।

तत्क्षण बैठ विमान मे पहुच गई साकेत।
रुकी महेन्द्रोद्यान मे हुए सभी समवेत।

लक्ष्मण शत्रुघ्न आदि ने किया चरण सस्पर्श।
अब राघव से चल रहा गुप्त विचार-विमर्श।

* मै लज्जित हू सीता! जो कुछ अनहोनी यह बात हुई,
अपने दृढ सम्बन्धो की हा! अकस्मात् ही घात हुई।
धन्य-धन्य है तेरा साहस, धन्य-धन्य है सबल सतीत्व,
दिखा रहा साक्षात युगल पुत्रो का शौर्य भरा व्यक्तित्व।

उस पर भी यह अग्नि-परीक्षा देने का जो दृढ सकल्प,
दिखलाता साकार सत्य-बल और शील का ओज अनल्प।
किन्तु तोल लेना अपने को अति दारुण दुष्कर है काम,
हो न कही परिणाम चलित, यो धीमे स्वर से बोले राम।

† किस भ्रम मे भूले हो स्वामी!
मर्यादा पुरुषोत्तम नामी,
किस भ्रम मे भूले हो स्वामी!

---

* रामायण
लय—प्रभु वासुपूज्य भजले प्राणी

जीवन भर मैं साथ रही
फिर भी पाए पहिचान नहीं
कहलाते हो अन्तर्यामी
किस भ्रम में भूले हो स्वामी !

थीं कितनी विपदाएं झेली,
मैं तो प्राणों पर भी खेली
रही प्रतिपल प्रभुपद अनुगामी
किस भ्रम में भूले हो स्वामी !

अपने तन-मन को टटोलो
मेरी सौगन्ध सत्य बोलो
क्या देखी मेरे में खामी
किस भ्रम में भूले हो स्वामी !

इस अबला से आक्रोश किया
किस भव का बदला हाय ! लिया
हित कामी बन क्यों प्रतिगामी
किस भ्रम में भूले हो स्वामी !

नहीं, नहीं मेरे मन में तो शंका जैसा कोई तत्त्व
दयिते ! अप्रतिहत आस्था है मानों ज्यों क्षायक सम्यक्त्व ।
जड़-जग का उन्माद मिटाने सचमुच यही अचूक दवा
सफल परीक्षण हो जाने से हो जाएगी शुद्ध हवा ।

दोहा

दयिते ! बुरा न मानना आशय मेरा स्पष्ट ।
क्षमतक्षामणा मि मिथ्या करूं हुआ जो कष्ट ।
प्रमुदित मना मनस्विनी बोली गिरा गम्भीर ।
एक नहीं जितनी कहो करूं परीक्षा धीर ।

* कहो ज्यो दिखलाऊ, मेरा अटल सतीत्व।
कहो ज्यो बतलाऊ, मेरा अडिग सतीत्व।

पावक की ज्वाला झेलू,
या पन्नग से भी मैं खेलू,
अत्युष्ण कोश भी पी जाऊ, मेरा अटल सतीत्व।

उत्तप्त उठाऊ गोला,
खाल मे जलता-शोला,
मैं रिक्त तुला पर तुल जाऊ, मेरा अटल सतीत्व।

अम्बर मे अधर रहू मै,
आतप अत्युग्र सहू मैं,
जल मे स्थल, स्थल मे जल लाऊ, मेरा अटल सतीत्व।

दोहा

अन्तिम निर्णय मे हुआ निश्चित अग्नि-स्नान
सत्वर सब होने लगा एकत्रित सामान

अति विशाल समतल धरा, देख एक उपयुक्त।
स्थान परीक्षा का वही माना सबने युक्त।

‡ खुदवाई मध्योमध्य एक
गहरी लम्बी चौडी खाई,
जिससे समुपस्थित जनता को
वह दृश्य दे सके दिखलाई,
खैरो के लक्कड चीर-चीर
आद्यन्त उसे भरवा डालो,

‡ लय—दीपावा ले नन्द

* सहनाणी

आज्वल्यमान वैश्वानर से [1]
प्रज्वलित उसे करना झांसी !

दोहा

समुपस्थिति अनिवार्य है प्रात सबकी अत्र।
उद्घोषित यह घोषणा यत्र तत्र सर्वत्र।

धीर क्षितिज की छाती भास्कर नभ प्रांगण में चढ़ता है
मुनि ज्यों बन्धन-मुक्त साधना-पथ पर आगे बढ़ता है।
अरुण अरुण है अरुण व्योम है अरुण सलिल है, अरुण धरा
तरुण अरुणता लिए ज्योतिमय रूप मैथिली का निखरा।

अम्बर से अम्बर मणि की नव किरणें भू पर उतर रहीं,
अग्नि-कुण्ड की ज्वालाएं, अम्बर छूने को उभर रहीं।
रवि किरणों की ज्वालाओं की फैल रही है प्रखर प्रभा
है विशाल उस जन-समूह के आनन पर अद्भुत विभा।

गीतक छन्द

जिधर देखो उधर मानव मेदिनी समवेत है
उधर सूना-सा समूचा हो रहा साकेत है।
मोह पारावार की ज्यों उमड़ती ही आ रही
हा बड़ा अन्याय है—ध्वनि एक ही बस आ रही।

कौन कहता रे ! अभागा सती है ना जानकी
स्पष्ट देवी रूप जो प्रतिमूर्ति-सी भगवान की।
चमचमाता भाल इसका स्वयं साक्षी सत्य का
आग में यों होम देना काम है क्या तथ्य का।

---

[1] रामायण

* हाय ! राम इस सीता को जीती न देखना चाहते।
वन मे नही मरी तो अव पावक मे इसे जलाते।

कैसे ये पाषाण हृदय है करुणा जरा न आती,
क्या अपनी अर्धांगिनी अवला ऐसे मारी जाती?
नही मानते कही सुनी मनमानी सदा चलाते।
हाय ! राम इस सीता को जीती न देखना चाहते।

कितने गए शिष्टमडल, कर अनुनय-विनय मनाने,
किन्तु एक की भी न चली यह क्या सूझी, क्या जाने?
लब्धप्रतिष्ठ सभी हारे है समझाते-समझाते।
हाय ! राम इस सीता को जीती न देखना चाहते।

जव से इस घर मे आई इसने दु ख ही दु ख देखा,
पता नही वेचारी के कैसी कर्मो की रेखा?
कौन करे क्या ! जव रक्षक ही यो ! भक्षक वन जाते।
हाय ! राम इस सीता को जीती न देखना चाहते।

हरा दिया राघव-लक्ष्मण को, इसके नन्दन ऐसे,
वीर-प्रसूता वह हो सकती है कलकिता कैसे?
लेना अन्त किसी का अनुचित नीतिकार वतलाते।
हाय ! राम इस सीता को जीती न देखना चाहते।

यह सप्ताचि सर्वाशी पलभर मे भस्म करेगी,
सुकुमाला वाला गुणमाला हा ! वेमौत मरेगी,
देख-देख इसकी आकृति सबके अन्तर अकुलाते।
हाय ! राम इस सीता को जीती न देखना चाहते।

---

* लय—हाय राम इण मिनखा देही स्यू

छाती पर रख हाथ स्वयं की करते क्यों न समीक्षा,
क्या सीता की तरह राम दे देंगे अग्नि-परीक्षा ?
समझे कौन रहस्य ? हो रही तरह-तरह की बातें।
हाय ! राम इस सीता को जीती न देखना चाहते।

दोहा

मान्ये समुचित रूप से बड़े-बड़े मंचान।
बैठे दर्शक जन सभी अपने अपने स्थान।

उच्च मंच से कर रहे श्री राघव उद्घोष।
हो जाओ खामोश सब हो जाओ खामोश।

* सुनो-सुनो साकेतवासियों ! सीता शौर्य दिखाएगी।
सूर्यवंश की विजय-पताका भूतल पर लहराएगी।

बिना हुताशन-स्नान किये होता सोने का तोल नहीं
नहीं शाण पर चढ़ता तब तक हीरे का कछु मोल नहीं
कड़ी कसौटी पर कस अपनी अभिनव ज्योति जगाएगी।
सूर्यवंश की विजय-पताका भूतल पर लहराएगी।

वैदेही के पार्थिव तन पर अधिक मोह अनुराग न हो
नहीं निखर सकता व्यक्तित्व स्वयं का जब तक त्याग न हो
सत्य-शील-बल से जीवन-मन्दिर पर कलश चढ़ाएगी।
सूर्यवंश की विजय-पताका भूतल पर लहराएगी।

सुनें ध्यान से जनक-सुता अब जो अपने उद्‌गार कहे
नहीं शब्द भी बोका होगा सारी जनता शान्त रहे
अटल आत्म विश्वास पूर्वक सती सफलता पाएगी
सूर्यवंश की विजय-पताका भूतल पर लहराएगी।

---

* लय—धाव हिमालय की चोटी से

* उज्ज्वल मजुल परिधान लिए
ज्यो ही वैदेही हुई खडी,
शारद शशधर की सी किरणे
मानो! मुखडे पर फूट पडी,
सौगुना रूप तव चमक उठा
तेजोमय भव्य ललाट छटा,
निकला हो मानो तिग्म-भानु
कर नितर-वितर घनघोर घटा।

सबकी आखे हैं उसी ओर
वे सकरुण भाव विभोर सभी,
मानो राकेश्वर-दर्शन को
उत्सुक हैं चतुर चकोर सभी,
है सहज शान्त अति सौम्याकृति
धृति झलक रही है, ढुलक रही,
किंचित् भी भय का काम नही
वह पुलक रही है, मुलक रही।

दोहा

ब्रह्मचर्य के तेज से है कण-कण उद्दीप्त।
भाव-भरे स्वर मे दिया सभाषण सक्षिप्त॥

† जीवन की यह स्वर्णिम वेला मेरे अग्नि-स्नान की।
वलिदानो से रक्षा होगी नारी के सम्मान की।
वन्दे मातरम्, वन्दे मातरम्।

जागृत महिला का महत्त्व इस महि-मडल पर अमर रहा,
जिसने प्राण-प्रहारी सकट, प्रण को रखने सदा सहा,

---

* सहनाणी

† लय—आओ बच्चो तुम्हें दिखाए झाकी हिन्दुस्तानी की

छाती पर रख हाथ स्वयं की करते क्यों न समीक्षा,
क्या सीता की तरह राम दे देंगे अग्नि-परीक्षा ?
समझे कौन रहस्य ? हो रही तरह-तरह की बातें।
हाय ! राम इस सीता को जीती न देखना चाहते।

दोहा

बान्धे समुचित रूप से बड़े-बड़े मंचान।
बैठे दर्शक जन सभी अपने-अपने स्थान।

उच्च मंच से कर रहे श्री राघव उद्घोष।
हो जाओ खामोश सब हो जाओ खामोश।

सुनो-सुनो साकेतवासियों ! सीता शौर्य दिखाएगी।
सूर्यवंश की विजय-पताका भूतल पर लहराएगी।

बिना हुताशन-स्नान किये होता सोने का तोल नहीं
नहीं शाण पर चढ़ता तब तक हीरे का कुछ मोल नहीं
कड़ी कसौटी पर कस अपनी अभिनव ज्योति जगाएगी।
सूर्यवंश की विजय-पताका भूतल पर लहराएगी।

वैदेही के पार्थिव तन पर अधिक मोह अनुराग न हो
नहीं निखर सकता व्यक्तित्व स्वयं का जब तक त्याग न हो
सत्य-शील-धन से जीवन-मन्दिर पर कलश चढ़ाएगी।
सूर्यवंश की विजय-पताका भूतल पर लहराएगी।

सुनें ध्यान से जनक-सुता अब जो अपने उद्गार कहे
नहीं बाल भी बांका होगा सारी जनता शान्त रहे
अटल आत्म विश्वास पूर्णतः सती सफलता पाएगी
सूर्यवंश की विजय-पताका भूतल पर लहराएगी।

[illegible]—[illegible] हिमालय की चोटी है

* उज्ज्वल मजुल परिधान लिए
ज्यो ही वैदेही हुई खडी,
शारद शशधर की सी किरणे
मानो! मुखडे पर फूट पडी,
सौगुना रूप तब चमक उठा
तेजोमय भव्य ललाट छटा,
निकला हो मानो तिग्म-भानु
कर तितर-बितर घनघोर घटा।

सबकी आखे हैं उसी ओर
वे सकरुण भाव विभोर सभी,
मानो राकेश्वर-दर्शन को
उत्सुक हैं चतुर चकोर सभी,
है सहज शान्त अति सौम्याकृति
धृति झलक रही है, ढुलक रही,
किंचित् भी भय का काम नही
वह पुलक रही है, मुलक रही।

दोहा

ब्रह्मचर्य के तेज से है कण-कण उद्दीप्त।
भाव-भरे स्वर मे दिया सभाषण सक्षिप्त॥

† जीवन की यह स्वर्णिम वेला मेरे अग्नि-स्नान की।
बलिदानो से रक्षा होगी नारी के सम्मान की।
वन्दे मातरम्, वन्दे मातरम्।

जागृत महिला का महत्त्व इस महि-मडल पर अमर रहा,
जिसने प्राण-प्रहारी सकट, प्रण को रखने सदा सहा,

---

* सहनाणी
† लय—आओ बच्चों तुम्हें दिखाए झाकी हिन्दुस्तानी की

उसके यश का उज्ज्वल अविरल अविकल अविषम स्रोत बहा,
दिखलाया है हृदय खोलकर समय-समय वीरत्व महा
कभी जुड़ेगी उसमें मेरे इस उन्नत अभियान की।
बलिदानों से रक्षा होगी नारी के सम्मान की।

मैंने स्वीकृत किया पतिव्रत अपना धर्म निभाने को
अन्त-स्फुरणा से इस मानवता का मान बढ़ाने को
भारतीय संस्कृति का गौरवमय इतिहास रचाने को
अपने उत्तम भावकत्व पर अभिनव चमक चढ़ाने को
साक्षी है मेरे मन की त्रिभुवन भास्कर भगवान की।
बलिदानों से रक्षा होगी नारी के सम्मान की।

इतनी कठिन परीक्षा देते किंचित् नहीं विषाद है
सत्य शपथ से कहती मन में अपरिमेय आह्लाद है
चिर आकांक्षित सफल हो रहा मेरा अन्तर नाद है
धुल जायेगा सहज सदा को झूठा जन-अपवाद है
यों कह दृढ़ संकल्प सुनाती उच्च स्वर से जानकी।
बलिदानों से रक्षा होगी नारी के सम्मान की।

१ रवि चन्द्र दिशाएं, लोकपाल
धरणी अम्बर, अगणित तारे
सर्वज्ञ सर्वदर्शी अनन्त
भगवन्त सिद्ध साक्षी सारे
मन से वाणी से काया से
सोते-जगते श्रीराम छोड़
की नहीं किसी की आकांक्षा
मैंने वैचारिक दृष्टि ओट।

---

१ महासती

दोहा

मैं सच्ची हू तो बने, पावक निश्चित नीर।
झगिति जलादे अन्यथा मेरा मृदुल शरीर।

इधर उठ रही होलिया, हुई बोलिया वन्द।
चित्राकित से हो रहे, सब नीरव निस्पन्द।

मगल लोकोत्तम शरण, विघ्नहरण है चार।
अर्हदतनु, मुनि, धर्म को रटती बार-बार।

नमोक्कार वर मन्त्र जप करके हृदय विशाल।
जलती ज्वाला कुण्ड मे कूद पडी तत्काल।

सबने देखा स्मितमना अटल सतीत्व प्रभाव।
हुआ हुताशन स्थान मे लहराता तालाव।

* देखो पावक पानी-पानी,
वह अग्नि-परीक्षा अटल बनी।
सीता सतीत्व की सहनाणी,
देखो पावक पानी-पानी।

सरवर हो रहा तरगाकुल,
खिल रहे कमल उत्पल शतदल,
भीनी-भीनी-सी मधुर-मधुर,
नीलाम्बर मे उडती परिमल,
वैदेही के यश ज्यो उज्ज्वल
क्रीडा करता हसो का दल,
रह-रह आता शीतल समीर,
लहराता जिससे ऊर्मिल जल।

---

* सहनाणी

मानो लहरें उठ-उठ सहर्ष
कर रही सती की अगवानी।
देखो पावक पानी-पानी।

मणि-मंडित स्वर्णिम सिंहासन
कर रहा सूर्य-सा उद्‌भासन
है समासीन उस पर सीता
सुख पूर्वक साधे पद्‌मासन
मानो मराल पर सरस्वती
उत्पल पर कमला कलावती।
सद्ज्ञानोपरि सम्यग्-श्रद्धा
त्यों हुई सुशोभित महासती।
पल में कैसा पलटा पासा
इसको खोजे अनुसन्धानी।
देखो! पावक पानी-पानी।

सन्ध

आत्म-शक्ति का स्रोत जिधर भी वह चलता है
उधर निरन्तर हरा भरा उपवन खिलता है।
आत्म-शक्ति का स्रोत जिधर भी वह चलता है।

स्रोत बिना पत्थर को चीरे बह न सकेगा
स्रोत मार्ग की बाधाओं को सह न सकेगा।
स्रोत कभी भी मौन धारकर रह न सकेगा
अपनी अन्तर-वाणी पूरी कह न सकेगा
इसमें अभिनव निर्मलता है उर्मिलता है।
आत्म-शक्ति का स्रोत जिधर भी वह चलता है।

दुष्कर अति दुष्कर है उसे प्रवाहित करना
सुविधाओं को त्याग झेलना होता मरना।

ध्येय-ध्यान एकत्व लिए इसमे सचरना,
विपदाओ से नही, सुखो से पडता डरना।
वही धन्य जो रखता इसकी अविकलता है,
आत्म-शक्ति का स्रोत जिधर भी बह चलता है।

जिसने ब्रह्म पा लिया उसने सब कुछ पाया,
त्वरित असम्भव को भी सम्भव कर दिखलाया।
शूली को सिंहासन, अहि को हार बनाया,
वज्र-कपाटो को पल भर मे तोड गिराया।
तत्क्षण ही सहकार बिना बोये फलता है,
आत्म-शक्ति का स्रोत जिधर भी बह चलता है।

कच्चे धागे से छलनी मे नीर निकाला,
बना स्वत पीयूष, प्राणहारी विष प्याला।
लाघ न पाया रेख मृगाधिप भी मतवाला,
जजीरो का बन्द खुल गया, टूटा ताला।
बिना स्नेह बाती के दीपक भी जलता है,
आत्म-शक्ति का स्रोत जिधर भी बह चलता है।

खीच-खीच कर हारे चीर न गए उतारे,
लगे किसी को और किसी के कौडे मारे।
घोर अमा मे भी दिखलाए चाद औ' तारे,
तो यह पावक-पानी हो क्या दृश्य नया रे!
वही सफल हो सकता जिसमे अविचलता है,
आत्म-शक्ति का स्रोत जिधर भी बह चलता है।

दोहा

आखे पथराई रही, देख शील साकार।
जन-सागर मे उमड कर आया मानो ज्वार।

मानो लहरें उठ-उठ सहर्ष
कर रही सती की अगवानी।
देखो पावक पानी-पानी।

मणि-मंडित स्वर्णिम सिंहासन
कर रहा सूर्य-सा उद्भासन
है समासीन उस पर सीता
सुख पूर्वक साधे पद्मासन
मानो मराल पर सरस्वती
उत्पल पर कमला कलावती।
सद्भावोपरि सम्यग्-श्रद्धा
त्यों हुई सुशोभित महासती।
पल में कैसा पलटा पासा
इसको सोचे अनुग-गामी।
देखो! पावक पानी-पानी।

स्रुव

आत्म-शक्ति का स्रोत जिधर भी वह चलता है
उधर निरन्तर हरा-भरा उपवन खिलता है।
आत्म-शक्ति का स्रोत जिधर भी वह चलता है।

स्रोत बिना पत्थर को चीरे बह न सकेगा
स्रोत मार्ग की बाधाओं को सह न सकेगा।
स्रोत कभी भी मौन धारकर रह न सकेगा
अपनी अन्तर-वाणी पूरी कह न सकेगा
इसमें अभिनव निर्मलता है ऊर्मिलता है।
आत्म-शक्ति का स्रोत जिधर भी वह चलता है।

दुष्कर अति दुष्कर है उसे प्रवाहित करना
सुविधाओं को त्याग झेलना होता मरना।

धधक रही थी धाय धाय जो साय साय कर जलती थी,
गगन चुम्बिनी भीषण लपटें कोसो दूर उछलती थी,
सीता के पावन सतीत्व से अग्नि हुई पानी-पानी।
सुनो जहा ही गूज रही है महासती की अमर कहानी।

छोडो बात आज की, याद करो वह दृश्य स्वयवर का,
वज्रावर्त धनुष चढाते क्या साहस था रघुवर का?
सीता के पावन सतीत्व से फली कामना मन-मानी।
सुनो जहा ही गूज रही है महासती की अमर कहानी।

भूल गए क्या आजनेय ने अतल महार्णव पार किया,
नाग-पाश को तोडा कैसा रावण का सत्कार किया?
सीता के पावन सतीत्व से लाया भूषण सहनाणी।
सुनो जहा ही गूंज रही है महासती की अमर कहानी।

अरे! सुना क्या कभी अमोघ शक्ति ऐसे बेकार गई,
लक्ष्मण ने नव सजीवन पा, सस्थापित की ख्यात नई,
सीता के पावन सतीत्व से मारा रावण अभिमानी।
सुनो जहा ही गूज रही है महासती की अमर कहानी।

सिंहनाद उस महारण्य मे जीने की भी क्या आशा?
टूट चुकी थी राघव को तो मिलने की भी अभिलाषा,
सीता के पावन सतीत्व से प्रकटो परम पुण्यवानी।
सुनो जहा ही गूज रही है महासती की अमर कहानी।

* इतने मे ही बढा अनुश्रुत शान्त सलिल का भीषण वेग,
बहने सब मचान लगे फैला जनता में अति उद्वेग।
त्राहि-त्राहि मच गई क्षणो मे आकुल-व्याकुल हुए सभी,
अरे! हुआ क्या? अरे! हुआ क्या? हो जाएगा प्रलय अभी।

---

* रामायण

करतल ध्वनियों से ध्वनित भू-नभ एकाकार।
जन-समूह में हो रहा मुख-मुख जय-जयकार।

कण-कण में पौरुष जगा हुई पुण्य बौछार।
नमस्कार करते सभी झुक झुक बारम्बार।

उठे झनझना वाद्य सब गीतों के स्वर-तार।
मानव-मन उत्साह का कोई वार न पार।

प्रगटे सत्य सतीत्व पर श्रद्धा के संस्कार।
अपने अपने कर रहे सभी व्यक्त उद्गार।

* धन्य है! महासती! महाभाग! तुम्हारी बलिहारी जाएं।
बलिहारी जाएं शील की महिमा महकाएं।

बहुतों को ही मिल जाता है मानव का आकार
किन्तु निकाला अरे! भामिनी! तू ने सच्चा सार
है संसार समूचा आभारी हम क्या गौरव गाएं?
धन्य है! महासती! महाभाग! तुम्हारी बलिहारी जाएं।

सुख में तो सब दिखलाते हैं अपना अपना स्वत्व
किन्तु कष्ट में जो दिखलाए उसका महा-महत्त्व
कैसा मिला तत्त्व संस्कृति को विस्मृति कभी न कर पाएं।
धन्य है! महासती! महाभाग! तुम्हारी बलिहारी जाएं।

सारा जीवन सत्य-शील का रहा ज्वलन्त प्रमाण
एक-एक घटनाओं पर न्यौछावर कर दें प्राण
तुम हो भारत-धरण संस्कृति की कृतियां क्या क्या बतलाएं?
धन्य है! महासती! महाभाग! तुम्हारी बलिहारी जाएं।

† सुनो यहां ही गूंज रही है महासती की अमर कहानी।
जो जीवित प्रतिमूर्ति सत्य की ब्रह्मचर्य की अटल निशानी।

---

* लय—म्हार सतगुरु करत विहार
† लय—बापू की यह अमर कहानी

धधक रही थी धाय धाय जो साय साय कर जलती थी,
गगन चुम्बिनी भीषण लपटे कोसो दूर उछलती थी,
सीता के पावन सतीत्व से अग्नि हुई पानी-पानी।
सुनो जहा ही गूज रही है महासती की अमर कहानी।

छोडो बात आज की, याद करो वह दृश्य स्वयवर का,
वज्रावर्त धनुष चढाते क्या साहस था रघुवर का?
सीता के पावन सतीत्व से फली कामना मन-मानी।
सुनो जहा ही गूज रही है महासती की अमर कहानी।

भूल गए क्या आजनेय ने अतल महार्णव पार किया,
नाग-पाश को तोडा कैसा रावण का सत्कार किया?
सीता के पावन सतीत्व से लाया भूषण सहनाणी।
सुनो जहा ही गूंज रही है महासती की अमर कहानी।

अरे! सुना क्या कभी अमोघ शक्ति ऐसे बेकार गई,
लक्ष्मण ने नव सजीवन पा, सस्थापित की ख्यात नई,
सीता के पावन सतीत्व से मारा रावण अभिमानी।
सुनो जहा ही गूज रही है महासती की अमर कहानी।

सिहनाद उस महारण्य मे जीने की भी क्या आशा?
टूट चुकी थी राघव को तो मिलने की भी अभिलाषा,
सीता के पावन सतीत्व से प्रकटो परम पुण्यवानी।
सुनो जहा ही गूज रही है महासती की अमर कहानी।

* इतने मे ही बढा अनुश्रुत शान्त सलिल का भीषण वेग,
बहने सब मचान लगे फैला जनता में अति उद्वेग।
त्राहि-त्राहि मच गई क्षणो मे आकुल-व्याकुल हुए सभी,
अरे! हुआ क्या? अरे! हुआ क्या? हो जाएगा प्रलय अभी।

---

* रामायण

इधर-उधर जन लगे भागने किन्तु न पाते त्राण कहीं
ऐसा लगता है अब तो ये बच पाएँगे प्राण नहीं।
बच्चे, बूढ़े, अरुण तरुण सब करते आक्रन्दन चीत्कार,
चढ़ता ही जाता है पानी कहीं दीखता आर न पार।

यह क्या अम्बुधि उमट गया है या है कुपित देव माया,
या निन्दा की महासती की उसका यह प्रतिफल पाया।
हे! भगवान! करें क्या ? कैसे शान्त बने यह पारावार
हो बद्धाञ्जलि बार-बार करुण स्वर से कर रहे पुकार।

ॐ जय सीता माता,
तेरे बिना न कोई जगदम्बे! त्राता।
ॐ जय सीता माता।

महासती अब अपनी लो समेट माया। (मां)[1]
तेरी अकल शक्ति का है परिचय पाया।

पतिव्रते! हे सुव्रते! कल्पलते! देवी!
अचरीक हम सब हैं चरण कमल सेवी।

अधम अधमता करता बड़े-बड़े होते।
अधमों के अघ-बल को उत्तम जन धोते।

हम अपराधी सारे क्षमा हमें कर दो।
करुणा पलक पसारो यह संकट हर दो।

सोरठा

सुन जनता की आह! दोनों हाथों से सपदि।
कर आकृष्ट प्रवाह सीता ने सीमित किया।

लय—ॐ जय शिवो! देव!

* सुख-सुख मगल ही मगल है,
गूज रहा अम्बर भूतल है।
सुख-सुख मगल ही मगल है।

मिट्टी के कण-कण मे मगल,
जन-जन के तन-मन मे मगल,
सरवर, तरुवर, वन-राजी मे
महक रही महिमा परिमल है।

विकच वदन लवणाकुश आते,
सविनय चरणो मे लुट जाते,
दोनो ओर सुशोभित मा के,
यथाख्यात सह ज्यो केवल है।

सपरिवार राघव बद्धाञ्जलि,
देते हैं शत-शत श्रद्धाञ्जलि,
मुक्त-कण्ठ गुण-गान कर रहे,
किया सूर्य-कुल को उज्ज्वल है।

है हर्षातिरेक मे लक्ष्मण,
चरण-स्पर्श कर रहे प्रति क्षण,
श्री शत्रुघ्न, विभीषण कपिपति
सबके विकसित हृदय कमल हैं।

आए नारद नृत्य रचाते,
सतत शील की महिमा गाते,
पैर न टिकते पवन-पुत्र के
पुलकित वासो रहे उछल हैं।

---

* लय—अमर रहेगा धर्म हमारा

इधर-उधर जन लगे भागने किन्तु न पाते त्राण कहीं
ऐसा लगता है अब तो ये बच पाएंगे प्राण नहीं।
बच्चे बूढ़े बरुण तरुण सब करते आक्रन्दन चीत्कार
बढ़ता ही जाता है पानी कहीं दीखता आर न पार।

यह क्या अम्बुधि उलट गया है या है कुपित देव माया,
या निन्दा की महासती की उसका यह प्रतिफल पाया।
हे ! भगवान ! करें क्या ? कैसे शान्त बने यह पारावार
हो बद्धाञ्जलि बार-बार करुण स्वर से कर रहे पुकार।

ॐ जय सीता माता
तेरे बिना न कोई जगदम्बे ! त्राता।
ॐ जय सीता माता।

महासती अब अपनी लो समेट माया। (मां)[1]
तेरी अकल शक्ति का है परिचय पाया।

पतिव्रते ! हे सुमते ! कल्पलते ! देवी !
चंचरीक हम सब हैं चरण कमल सेवी।

अधम अधमता करता बड़े-बड़े होते।
अधमों के अघ-मल को उत्तम जन धोते।

हम अपराधी सारे क्षमा हमें कर दो।
करुणा पलक पसारो यह संकट हर दो।

सोरठा

सुन जनता की आह! दोनों हाथों से सपदि।
कर आकृष्ट प्रवाह सीता ने सीमित किया।

---

[1] लय—ॐ जय जगदीश हरे !

तेरे मे अक्षय सत्व भरा ,
तेरे मे अव्यय तत्त्व भरा ,
सस्कृति का महा महत्त्व भरा ,
अपनत्व भरा तू श्रुत-परिकर ! जय हो, जय हो, जय हो।

कितने शरणागत तारे है ,
कितने जन पार उतारे हैं ,
जितने न व्योम मे तारे हैं ,
श्रद्धानत है सारे सुर-नर जय हो, जय हो, जय हो।

तू कामधेनु, तू नन्दनवन ,
तू सुर-सरिता, सुर-वृक्ष सघन ,
'तुलसी' का तू ही जीवन-धन ,
अभिनन्दन अभिनन्दन सादर जय हो, जय हो, जय हो।

महासती की जय हो जय हो
अटल सतीत्व शौर्य अक्षय हो
आह्लादित यों सारी जनता
सीता का अभियान सफल हो।

* जय ब्रह्मचर्य ! जय व्रत शेखर ! जय हो, जय हो जय हो।
जय ज्योतिर्धर ! जय प्रभा प्रखर ! जय हो जय हो, जय हो।

तप में तू सर्वोत्तम तप है
जप में तू सर्वोत्तम जप है
रवि से बढ़कर उग्रातप है,
तू शीतल ज्यों शारद शशधर जय हो जय हो जय हो।

तू जीवन का उन्नायक है,
साधक का भाग्य विधायक है
सन्तों का सदा सहायक है
वांछित दायक हे मंगलकर ! जय हो जय हो जय हो;

तू अनुपमेय है अनुपम है
दुर्भेद्य दुरनुचर दुर्गम है
संयम रक्षण में सक्षम है
यम-नियम सभी तेरे अनुचर जय हो जय हो जय हो,

तू ही गन्तव्य हमारा है
तू ही मन्तव्य हमारा है
तू ही कर्तव्य हमारा है
तू गया मन्य हे शक्ति-निर्झर ! जय हो जय हो जय हो।

लय—उत्तरो जन-मन पर ज्योति किरण

प्रशस्ति

* यह अग्नि-परीक्षा की घटना
सर्वत्र देश मे विश्रुत है
उसका साहित्यिक काव्य-रूप
लो सबके सम्मुख प्रस्तुत है,
इतिहासो मे है रही सदा
गौरवमय भारत की नारी,
उसके सतीत्व के मध्यम से ही
चमक उठी रचना सारो।

रामायरण के हैं विविध रूप
अनुरूप कथानक ग्रहरण किया,
निश्छल मन से कलना द्वारा
समुचित भावो को वहन किया,
वास्तव मे भारत की सस्कृति
है रामायरण मे बोल रही,
अपने युग के सवादो से
वह ज्ञान-ग्रन्थिया खोल रही।

जिसमे सीता का शौर्य भरा
जीवन देता सन्देश नया,
आदेश नया, उपदेश नया,
नारी-जागृति उन्मेष नया,

———

* यह अग्नि-परीक्षा की घटना
सर्वत्र देश मे विश्रुत है,
उसका साहित्यिक काव्य-रूप
लो सबके सम्मुख प्रस्तुत है,
इतिहासो मे है रही सदा
गौरवमय भारत की नारी,
उसके सतीत्व के मध्यम से ही
चमक उठी रचना सारी।

रामायण के है विविध रूप
अनुरूप कथानक ग्रहण किया,
निश्छल मन से कलना द्वारा
समुचित भावो को वहन किया,
वास्तव मे भारत की सस्कृति
है रामायण मे बोल रही,
अपने युग के सवादो से
वह ज्ञान-ग्रन्थिया खोल रही।

जिसमे सीता का शौर्य भरा
जीवन देता सन्देश नया,
आदेश नया, उपदेश नया,
नारी-जागृति उन्मेष नया,

---

* सहनाणी

महिला के माता के मिलते
इसमें सीता का युगल रूप
अपने ही सत्य-शील बल से
निखरा जग में उसका स्वरूप।

चिर आकांक्षित कल्पित कल्पना आज सफल साकार हुई
शिक्षा विविध समीक्षामय यह अभिनव कृति तैयार हुई।
मुनि-सतियों की सतत प्रार्थना रह रह प्रेरित करती थी
माता[4] की भावुक वाणी उत्साह हृदय में भरती थी।

दोहा

सुन सबकी अभ्यर्थना समुचित किया प्रयास।
द्विशताब्दी का मिल गया अनायास अवकाश।

पश्चिम बंग बिहार से पावन उत्तर प्रान्त।
माइल युगल सहस्र की साथी यात्रा शान्त।

अकस्मात् ही बीच में मन्त्री-स्वर्ग प्रयाण।
घोर[2] तपस्वी का किया सफल सुफल अभियान।

बीदासर से भी मिला मन्ना की विश्वस्त।
विशद सारणा-वारणा कर आश्रम को स्वस्थ।

समारोह अभिनिष्क्रमण सुघरी में सम्पन्न।
विकट मार्ग मेवाड़ के देखे परम प्रसन्न।

रामायण

१ मुनिश्री चम्पालाल जी
२ मंत्री मुनिश्री मगनलालजी स्वामी
३ मुनिश्री सुखलालजी
४ आचार्यश्री तुलसी की माता

यथा समय हो केलवे पहुचे राजसमन्द ।
सघ चतुष्टय मे खिला अनुपम अमितानन्द ।

सख्या श्रमणी श्रमण की दो सौ मे कम तीन ।
गुरु-अनुशासन रत सदा शासन मे तल्लीन ।

* चातुर्मासिक, द्वै मासिक, मासिक महाभद्रोत्तर तप भव्य ,
तेरापथ की तप साधना चलती आज अनल्प अलभ्य ।
सारे मेदपाट का अभिनव हुआ एक ही चातुर्मास ,
अणुव्रत आन्दोलन सहवर्ती नये मोड का नया विकास ।

तेरापथ की क्रान्ति-भूमि यह जन्म-भूमि मेवाड प्रदेश ,
इस शासन के गौरव मे रखता है अपना स्थान विशेष ।
यही हुआ शास्त्रो का मथन, यही मिला निर्णय नवनीत ,
यही पूज्य आचार्य भिक्षु का पनपा तेरापन्थ पुनीत ।

दोहा

स्वय अलौकिक पुरुष थे, दिया अलौकिक तत्त्व ।
क्रान्तिकारको मे रहा उनका वडा महत्त्व ।

स्पष्टवादिता मे प्रथम, निर्णायक निर्भीक ।
उनकी वाणी सघ मे वनी लोह की लीक ।

सबल सगठन-शक्ति के सूत्रधार बेजोड ।
जागृति लाने श्रम किया जीवन भर जी तोड ।

भारमल, ऋषिराय, जय, मघवा, माणक, डाल ।
श्री कालू करुणा जलधि गण-गोकुल-गोपाल ।

उनके पुण्य प्रताप से सिद्ध सदा सब कार्य ।
है कृतज्ञ श्रद्धा प्रणत 'तुलसी' नवमाचार्य ।

---

* रामायण

महिला के माता के मिलते
इसमें सीता के युगल रूप
अपने ही सत्य-शील बल से
निखरा जग में उसका स्वरूप।

चिर आकांक्षित कलित कल्पना आज सफल साकार हुई
शिक्षा विविध समीक्षामय यह अभिनव कृति तैयार हुई।
मुनि-सतियों की सतत प्रार्थना रह रह प्रेरित करती थी
माता[1] की भावुक वाणी उत्साह हृदय में भरती थी।

दोहा

सुन सबकी अभ्यर्थना समुदित किया प्रयास।
द्विशताब्दी का मिल गया अनायास अवकाश।

पश्चिम बंग बिहार से पावन उत्तर प्रान्त।
मालव युगल सहस्र की साथी यात्रा शान्त।

अकस्मात् ही बीच में मन्त्री-स्वर्ग प्रयाण।
चार तपस्वी का किया सफल सुफल अभियान।

बीदासर से भी मिला अम्मा को विश्वास।
विशद सारणा-वारणा कर शासन को स्वस्थ।

समारोह अभिनिष्क्रमण सुधरी में सम्पन्न।
विकट मार्ग मेवाड़ के हुये परम प्रसन्न।

रामायण

१ मुनिश्री चम्पालाल जी
२ मंत्री मुनिश्री मगनलालजी स्वामी
३ मुनिश्री सुखलालजी
४ आचार्यश्री तुलसी की माता

* इस पावस के प्रथम चरण में यह मासिक कृति है सम्पूर्ण
दो हजार सतरह सम्वत भाद्रव कृष्णा नवमी परिपूर्ण।
दो-दो घण्टा तक रात्रि में रचना का यह प्रथम प्रयोग
दृढ़ विश्वास अटल आत्मा में होगा इसका शुभ उपयोग।

सोरठा

पन्द्रह पुण्य अगस्त, निशि में साढ़े दस बजे।
प्रमुदित मन-तन स्वस्थ हुई सुखद सम्पन्नता।

दोहा

वर्धमान शासन मुदित वर्धमान परिणाम।
वर्धमान साहित्य है वर्धमान सब काम।

●